* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

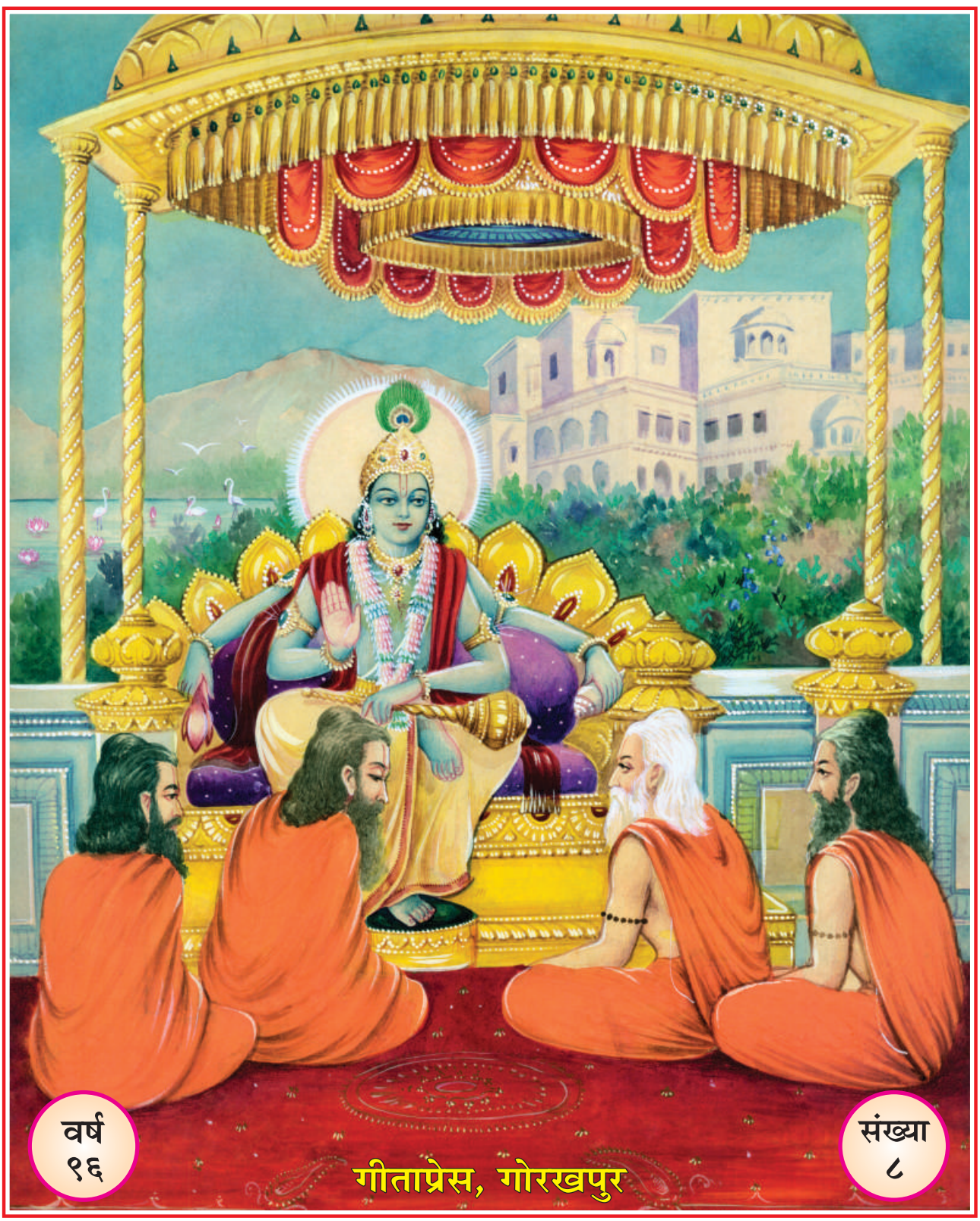

कल्याण

मूल्य १० रुपये

श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान

शिवध्यानरत भगवती पार्वती

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६ | गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, अगस्त २०२२ ई० | संख्या ८

पूर्ण संख्या ११४९

भगवान् शंकरकी वररूपमें प्राप्तिहेतु पार्वतीजीकी तपस्या

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥

भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥

[श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, अगस्त २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ८

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् शंकरकी वररूपमें प्राप्तिहेतु पार्वतीजीकी तपस्या	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- भगवान् श्रीकृष्णका सायंकालिक ध्यान **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५- पिता-पुत्र-सम्बन्धसे भी बढ़कर है धर्म (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- उत्तेजनाके क्षणोंमें **[हमारे आन्तरिक शत्रु]** (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	९
७- लीलामयकी लीलाएँ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१३
८- स्थानका मनपर प्रभाव (गोलोकवासी सन्त श्रीकेशवरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	१५
९- भक्तिपथके पाँच बड़े काँटे	१६
१०- तत्त्वज्ञान **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१७
११- 'तुलसी कथा रघुनाथ की' **[तुलसी-जयन्तीपर विशेष]** (जयदीप सिंह)	१८
१२- सफल राजनीतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण (श्रीवासुदेवजी शर्मा)	२०
१३- कालापानीसे मृत्यु श्रेयस्कर है **[क्रान्ति-गाथा]**	२३
१४- सात्त्विक वृत्ति (श्रीसुरेशचन्द्रजी)	२४
१५- शिव-स्तुति (श्रीब्रह्मबोधिजी)	२५
१६- नागपंचमी-व्रत-माहात्म्य	२६
१७- जीवनमें सद्गुणोंकी वृद्धि कैसे हो? [प्रेषक—प्रो० श्रीसन्तोष कुमारजी तिवारी]	२८
१८- जपका रहस्य (श्रीरामलालजी पहाड़ा)	२९
१९- लंकाकी अधिष्ठात्रीदेवीद्वारा निशाचर-संहारकी भविष्यवाणी (श्रीइंदल सिंहजी भदौरिया)	३१
२०- झेन साधनाकी रहस्यमयी कुंजी (श्रीरामशास्त्रीजी)	३२
२१- समरूप रहकर ही क्रोधपर नियन्त्रण (श्रीविजयजी सिंगल)	३४
२२- कौन-सा मार्ग ग्रहण करें? (प्रो० श्रीरामचरणजी महेन्द्र)	३५
२३- सम्पूर्ण जीवन ही ईश्वरकी पूजा बन जाय (स्वामी श्रीसच्चिदानन्देन्द्र सरस्वतीजी महाराज)	३६
२४- रुद्रेश्वर महादेव **[तीर्थ-दर्शन]** (श्रीप्रदीपकुमारजी)	३८
२५- गृहस्थ सन्त परम भागवत पण्डित मिहीलालजी (श्रीराजकमलजी मिश्रा)	३९
२६- अनजाने कर्मका फल	४२
२७- भारतीय संस्कृतिकी मूलाधार—गौ (गोरक्षपीठाधीश्वर योगी श्रीआदित्यनाथजी महाराज, मुख्यमन्त्री उत्तरप्रदेश सरकार)	४३
२८- गायका दूध बढ़ानेके उपाय	४४
२९- धनोपार्जनका उचित और अनुचित रूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	४५
३०- सच्चा सेवक बननेका उपाय	४५
३१- कृपानुभूति	४६
३२- पढ़ो, समझो और करो	४७
३३- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- शिवध्यानरत भगवती पार्वती	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान	(इकरंगा)	७
४- कृष्णको डाँटती माता यशोदा	(,,)	१३
५- विषपान करते भगवान् शंकर	(,,)	१४
६- सुन्द-उपसुन्दको वर देते ब्रह्माजी	(,,)	१५
७- परस्पर युद्धरत सुन्द-उपसुन्द	(इकरंगा)	१६
८- शंकर-पार्वती-संवाद	(,,)	१८
९- रुद्रेश्वर महादेव	(,,)	३८
१०- गृहस्थ सन्त पं० मिहीलालजी	(,,)	३९
११- धर्मराजका दूतोंको समझाना	(,,)	४२

एकवर्षीय शुल्क
₹ 500
सभी अंक रजिस्ट्रीसे

एकवर्षीय शुल्क
₹ 300
मासिक अंक साधारण डाकसे

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (` 4,000), पंचवर्षीय US$ 250 (` 20,000) — Us Cheque Collection Charges 6 $ Extra

पंचवर्षीय शुल्क
₹ 2500
सभी अंक रजिस्ट्रीसे

पंचवर्षीय शुल्क
₹ 1500
मासिक अंक साधारण डाकसे

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

॥ श्रीहरिः ॥

साधकोंके जीवनमें सजगता और सतर्कता बहुत जरूरी है। यदि अपना मार्ग भगवद्भक्ति और समर्पणका है, तो हमें बार-बार यह जाँच करते रहना चाहिये कि दिनभर जो भी कार्य हमारे शरीर-मन-बुद्धिसे हो रहे हैं, क्या उन्हें हमने भगवान्‌की कृपा-करुणासे होता हुआ जाना-समझा है? क्या हमने दीनभावसे उन्हें भगवदर्पण किया है? यदि नहीं, तो भगवान्‌से अपनी भूलकी क्षमा माँगते हुए साधनमार्गपर दृढ़तासे बढ़ते रहनेकी शक्ति माँगनी चाहिये।

यदि अपना मार्ग ज्ञानका है और स्वयंके सच्चिदानन्द स्वरूपकी झलक मिलनी शुरू हो गयी है, तो इन्द्रियसमूहसे होनेवाले प्रत्येक क्रियाकलापमें निरन्तर द्रष्टाभाव बना रहना आवश्यक है। जो कुछ भी हमारे शरीर-मन-बुद्धिसे हो रहा हो, उसे चैतन्यभावसे निरन्तर देखते रहें कि यह हो रहा है और मैं केवल इसे होता हुआ देख रहा हूँ।

यदि निष्काम-कर्मका साधनमार्ग हमने चुना है, तो हर क्रिया-कलापको स्मरणपूर्वक हमें इस प्रकार करना चाहिये कि उस कामको करते समय हमें याद रहे कि हम भगवान्‌की दी हुई प्रेरणा और क्रियाशक्तिसे उसे कर रहे हैं और उसके होनेके बाद उसकी सफलता-विफलतासे निर्लिप्त रहकर उस कर्मका फल प्रभुचरणोंमें समर्पित कर दें।

मार्ग कोई हो, चलनेमें सजगता जरूरी है, अन्यथा सावधानी हटी, दुर्घटना घटी। नारायण हरि

—सम्पादक

कल्याण

याद रखो—जगत्‌में जो कुछ है, सब केवल भगवान्‌का ही मूर्तरूप है, सभीमें भगवान् विराजमान हैं। केवल मनुष्योंमें ही नहीं—पशु-पक्षी-कीट-पतंग सभीमें और इन चेतन प्राणियोंमें ही नहीं, समस्त जड़ वर्गमें भी भगवान् हैं। श्रीमद्भागवतमें योगीश्वर कविने बतलाया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

अर्थात् 'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष, वनस्पति, नदी, समुद्र'—सभी श्रीहरिके शरीर हैं। ऐसा जानकर चराचरमात्रको अनन्य भगवद्भावसे प्रणाम करे। अतएव सबमें भगवान् समझकर सबकी अपने कर्मके द्वारा सेवा करो, सबको यथासाध्य सुख पहुँचाओ और सबका हित-साधन करो।

याद रखो—जो दूसरे प्राणियोंका अहित करता है, वह मानो भगवान्‌का ही अहित करता है। इसलिये कभी किसीका भी अहित न तो करो, न चाहो। यह समझो कि तुम्हारे पास जो कुछ भी साधन-सामग्री है, सभी जगत्-रूप भगवान्‌की सेवाके लिये ही है। अपनेको अनन्य सेवक मानो।

याद रखो—संसारमें सात प्रकारके मनुष्य हैं—सबसे श्रेष्ठ वे हैं, जो अपनी हानि करके भी दूसरोंको लाभ पहुँचाते हैं। दूसरे वे हैं, जो अपनी हानि न करके दूसरोंको लाभ पहुँचाते हैं। तीसरे वे हैं, जो अपने लाभके लिये ही प्रयत्नवान् रहते हैं, दूसरोंकी चिन्ता नहीं करते। चौथे वे हैं, जो अपने लाभमें दूसरोंकी हानि होती देखते हैं तो उसे सह लेते हैं, कोई परवा नहीं करते। पाँचवें वे हैं, जो दूसरोंकी हानि होती हो और उसमें अपना लाभ दीखता हो तो दूसरोंको हानि पहुँचा देते हैं। छठे वे हैं, जो जान-बूझकर सदा दूसरोंकी हानि ही करते हैं और उसीमें अपना लाभ मानते हैं और सातवें सबसे नीच मनुष्य वे हैं, जो अपनी हानि करके भी दूसरोंको हानि पहुँचाना चाहते हैं।

याद रखो—दूसरोंकी हानिमें जो अपना लाभ मानता है अथवा दूसरोंके लाभमें जो अपनी हानि मानता है, वे दोनों ही भूले हुए हैं। जिससे दूसरोंको लाभ होगा, उसमें तुम्हारी हानि होगी ही नहीं और जिससे दूसरोंकी हानि होगी, उसमें तुम्हारा लाभ होगा ही नहीं।

याद रखो—जो मनुष्य दूसरेकी हानिमें अपना लाभ मानता है, वह बड़ा ही अभागा है; क्योंकि उसका जीवन पाप-जीवन बन जाता है और जो दूसरेके लाभमें ही अपना लाभ मानता है और सदा दूसरोंके हितसाधनमें लगा रहता है, वह बड़ा सौभाग्यवान् है, उसपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है।

याद रखो—जो सब जीवोंमें भगवान्‌को देखते हैं, उनके द्वारा तो ऐसा कोई काम कभी होगा ही नहीं, जिससे किसीको हानि पहुँचे या किसीका अहित हो। वे तो नित्य-निरन्तर अपने प्रत्येक कर्मके द्वारा भगवान्‌की पूजा ही करते हैं।

याद रखो—जब प्राणिमात्रमें भगवद्भाव निश्चित हो जाता है, तब सर्वत्र भगवान्‌की झाँकी होने लगती है और समस्त क्रियाओंमें भगवान्‌की लीलाके दर्शन होने लगते हैं।

याद रखो—जब तुम्हारा सर्वत्र सबमें भगवद्भाव हो जायगा, तब तुम्हारे लिये कोई भी पराया नहीं रह जायगा। इस अवस्थामें क्षुद्र स्वार्थवश होनेवाले वैर-विरोध, कामना-वासना, राग-द्वेष आदि दोषोंका सर्वथा अभाव हो जायगा, जीवन त्यागमय होगा और हृदयमें प्रेम, आनन्द और शान्तिकी निर्मल सरिता बहने लगेगी।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् श्रीकृष्णका सायंकालिक ध्यान

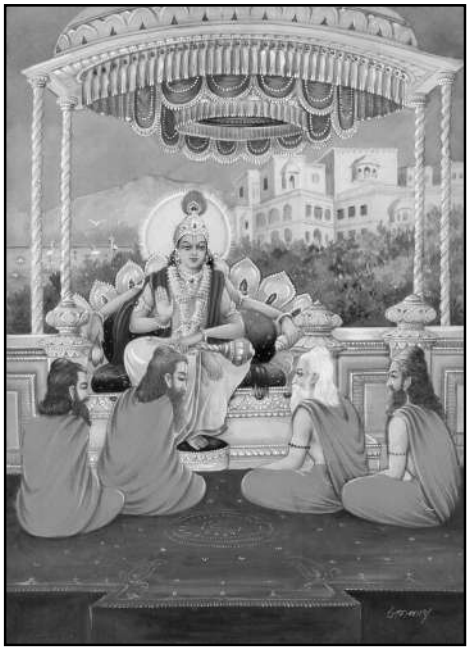

प्रस्तुत चित्रमें भगवान् श्रीकृष्णके सायंकालीन ध्यानके स्वरूपको चित्रित किया गया है। सायंकालमें भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरीमें एक सुन्दर भवनके भीतर विराजमान हैं, जो विचित्र उद्यानसे सुशोभित है। वह श्रेष्ठ भवन आठ हजार गृहोंसे अलंकृत है। उसके चारों ओर निर्मल जलवाले सरोवर सुशोभित हैं। हंस, सारस आदि पक्षियोंसे व्याप्त उन सरोवरोंकी कमल और उत्पल आदि पुष्प शोभा बढ़ाते हैं। उक्त भवनमें एक शोभासम्पन्न मणिमय मण्डप है, जो उदयकालीन सूर्यदेवके समान अरुण प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा है। उस मण्डपके भीतर सुवर्णमय कमलकी आकृतिका सुन्दर सिंहासन है, जिसपर त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्ण बैठे हैं। उनसे आत्मतत्त्वका निर्णय करानेके लिये मुनियोंके समुदायने उन्हें सब ओरसे घेर रखा है। भगवान् श्यामसुन्दर उन मुनियोंको अपने अविनाशी परम धामका उपदेश दे रहे हैं। उनकी अंगकान्ति विकसित नीलकमलके समान श्याम है। दोनों नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं। सिरपर स्निग्ध अलकावलियोंसे संयुक्त सुन्दर किरीट सुशोभित है। गलेमें वनमाला शोभा पा रही है। प्रसन्न मुखारविन्द मनको मोहे लेता है। कपोलोंपर मकराकृति कुण्डल झलमला रहे हैं। वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है। वहीं कौस्तुभमणि अपनी प्रभा बिखेर रही है। उनका स्वरूप अत्यन्त मनोहर है। उनका वक्ष:स्थल केसरके अनुलेपसे सुनहली प्रभा धारण करता है। वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं, विभिन्न अंगोंमें हार, बाजूबन्द, कड़े और करधनी आदि आभूषण उन्हें अलंकृत कर रहे हैं। उन्होंने पृथ्वीका भारी भार उतार दिया। उनका हृदय परमानन्दसे परिपूर्ण है तथा उनके चारों हाथ शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं।*

भक्तोंको इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान करना चाहिये।

जो प्रतिदिन इस प्रकार सायंकालमें भगवान् वासुदेवका ध्यान करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाकर अन्तमें परम गतिको प्राप्त होता है।

[नारदपुराण, पूर्वभाग अ० ८०]

---

* सायाह्ने द्वारवत्यां तु चित्रोद्यानोपशोभिते। अष्टसाहस्रसंख्यातैर्भवनैरुपमण्डिते ॥
हंससारससंकीर्णकमलोत्पलशालिभि:। सरोभिर्निर्मलाम्भोभि: परीते भवनोत्तमे॥
उद्यत्प्रद्योतनोद्योतद्युतौ श्रीमणिमण्डपे। हेमाम्भोजासनासीनं कृष्णं त्रैलोक्यमोहनम्॥
मुनिवृन्दै: परिवृतमात्मतत्त्वविनिर्णये। तेभ्यो मुनिभ्य: स्वं धाम दिशन्तं परमक्षरम्॥
उन्निन्द्रेन्दीवरश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम्। स्निग्धकुन्तलसम्भिन्नकिरीटवनमालिनम् ॥
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम्। श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं सुमनोहरम्॥
काश्मीरकपिशोरस्कं पीतकौशेयवाससम्। हारकेयूरकटककटिसूत्रैरलंकृतम् ॥
हृतविश्वम्भराभूरिभारं मुदितमानसम्। शङ्खचक्रगदापद्मराजद्भुजचतुष्टयम् ॥

(ना० पूर्व० ८०। ९२—९९)

पिता-पुत्र-सम्बन्धसे भी बढ़कर है धर्म

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

महाराज मरुत्तका जन्म सूर्यवंशमें हुआ था, वे चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनका शासन-चक्र सातों द्वीपोंमें अबाध रूपसे फैला हुआ था। अपने पिता अवीक्षितके राज्य स्वीकार न करनेके कारण पितामह करन्धमके बाद वे राजसिंहासनपर बैठे। जिस प्रकार पिता अपने औरस पुत्रोंकी रक्षा करता है, मरुत्त उसी प्रकार प्रजाजनोंका धर्मपूर्वक पालन करते थे।

एक बार और्व मुनिके आश्रममें पाताललोकके नागोंने आकर दस मुनिकुमारोंको डस लिया। यद्यपि महर्षिलोग इन सबको अपने ब्रह्मतेजसे भस्म कर डालनेकी शक्ति रखते थे, फिर भी दण्ड देनेका अपना अधिकार न समझ वे चुप रहे। इधर जब राजा मरुत्तको इस बातका पता लगा, तब वे तुरंत ऋषिके आश्रमपर पहुँचे और उन्होंने कुपित हो पाताललोकनिवासी सम्पूर्ण नागोंका संहार करनेके लिये संवर्तक नामक अस्त्र उठाया। उस महान् अस्त्रके तेजसे सारा नागलोक सहसा जल उठा। अब तो साँपोंमें बड़ा हाहाकार मचा। उनमेंसे कुछ अपने स्त्री-पुत्रोंको साथ ले मरुत्तके पिता अवीक्षित और उनकी पत्नीकी शरणमें गये। उन्हें रक्षाका आश्वासन देकर वीर अवीक्षित अपने पुत्रके पास पहुँचे और उन्हें अस्त्र लौटा लेनेके लिये कहा। परंतु मरुत्तने उनकी बात नहीं सुनी। उन्होंने कहा कि 'नागोंने मुनिकुमारोंको डसा है, हविष्योंको भी दूषित किया है तथा आश्रमके सम्पूर्ण जलाशयोंको विषैला कर दिया है। अत: ये आततायी हैं, इनका वध करनेमें कोई दोष नहीं है; बल्कि इन्हें दण्ड देना मेरा कर्तव्य है, अत: आप मेरे कर्तव्य-पालनमें बाधा न डालें।'

इधर अवीक्षितने कहा कि 'इन सबको मैं अभय-दान दे चुका हूँ, अत: इनकी रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ, यदि तुम नहीं मानते तो लो मैं अस्त्रके द्वारा ही तुम्हारे अस्त्रका प्रतीकार करता हूँ।' यों कहकर उन्होंने अपने धनुषपर कालास्त्रका संधान किया। इस प्रकार पिता-पुत्रमें युद्ध छिड़ गया। दोनों ही अपनी-अपनी बातपर दृढ़ थे। एकने प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये दुष्टोंके वधका प्रण ले रखा था और दूसरा अपनी शरणमें आये हुए सर्पोंको रक्षाका वचन दे चुका था। दोनोंकी धर्मनिष्ठा आदर्श थी। पुत्रने अपने प्रजा-पालनरूप व्रतमें बाधा डालनेवाले पिताकी परवा नहीं की और पिताने अपने शरणागत-रक्षाके व्रतमें बाधक बने हुए प्राणोपम पुत्रपर भी शस्त्र उठा लिया।

धर्मके लिये पिता-पुत्रके बीच यह संग्राम जगत्के इतिहासमें अनोखा था। दोनोंको एक-दूसरेका वध करनेके लिये दृढसंकल्प देख भार्गव आदि मुनि बीचमें पड़ गये और उन्होंने दोनोंको शान्त किया। उन्होंने कहा कि 'नागलोग डसे हुए मुनिकुमारोंको जिला देनेके लिये कह रहे हैं; ऐसा होनेसे मरुत्तके द्वारा प्रजापालन सहज ही हो जायगा और मुनिकुमारोंकी रक्षा हो जानेपर सर्पोंको मारनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी।' पिता-पुत्र इस बातपर राजी हो गये और सर्पोंने अपना विष खींचकर दिव्य ओषधियोंके प्रयोगसे मुनिकुमारोंको जिला दिया।

तदनन्तर राजा मरुत्तने पुन: अपने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। अवीक्षितने भी मरुत्तको प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और कहा—वत्स! तुम शत्रुओंका मान मर्दन करो, चिरकालतक पृथ्वीका पालन करते रहो। पुत्र और पौत्रोंके साथ आनन्द भोगो तथा तुम्हारे कोई शत्रु न हों।

इस प्रकार यह घटना बताती है कि राजाके लिये पिता-पुत्र-सम्बन्धसे भी बढ़कर धर्मकी मर्यादा है। राजा मरुत्त सत्त्व और पराक्रमसे युक्त महान् तेजस्वी थे। सातों द्वीपोंमें कहीं भी उनकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं होता था।

हमारे आन्तरिक शत्रु—

उत्तेजनाके क्षणोंमें

[क्रोध, कारण और निवारण]

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'क्रोध पाप कर मूल!'

जानता हूँ कि क्रोध बड़ी बुरी चीज है।

क्रोधके चलते क्या नहीं होता?

तुलसीबाबाने कहा है—

'क्रोध के परुष बचन बल!'

परंतु मुझपर जब क्रोध सवारी गाँठता है तब जुबानसे जहर ही उगलकर शान्त नहीं हो जाता, मैं मार-पीटपर भी आमादा हो जाता हूँ। हाथ-पैर भी चला बैठता हूँ और कभी-कभी तो उसका दौरा इतना तेज होता है कि हाथमें छुरा हो तो खून कर बैठूँ, पिस्तौल हो तो क्रोधके पात्रको गोलीसे उड़ा दूँ। वश चले तो उसका अस्तित्व ही पृथ्वीतलसे उड़ा दूँ!

× × ×

कहावत है—***'कम कूवत रिस ज़्यादा!'***

दुर्बल व्यक्तिको बहुत तेज गुस्सा आता है। बूढ़ों और बीमारोंका चिड़चिड़ापन प्रसिद्ध ही है।

शायद दुर्बल कायाके कारण ही मुझे क्रोध अधिक आता हो!

पर मैंने देखा है कि मोटे-तगड़े, हट्टे-कट्टे व्यक्ति भी क्रोधके शिकार बनते हैं और कभी-कभी उनका क्रोध चरम सीमापर जा पहुँचता है।

आपको यदि क्रोध नहीं आता, आप कभी उत्तेजित नहीं होते, उत्तेजनाके क्षणोंमें भी आप शान्त रहते हैं तो आप प्रणम्य हैं, वन्दनीय हैं। आपके चरणोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम!

× × ×

मेरा अपना हाल तो बहुत बुरा है।

दफ्तरसे थका-माँदा लौटूँ, भूखके मारे बुरा हाल हो और देखूँ कि पत्नीने अभी चूल्हेमें आग भी नहीं जलायी, अथवा दाल-सागमें जरूरतसे ज्यादा नमक-मिर्च छोड़ दी है अथवा रोटी जला दी है, तो देखिये मेरे क्रोधका पारा!

उस दिन थाली न टूटे, सेवापरायणा पत्नीका गन्दी गालियोंसे समादर न हो, तो उसका भाग्य सराहना चाहिये।

× × ×

गरमीके दिन हैं। दफ्तरकी छुट्टी है। दोपहरमें खाना खाकर मजेकी झपकी ले रहा हूँ। इसी समय घरका कोई बच्चा किसी चीजके लिये ठुनकने लगता है अथवा खेलते-खेलते कोई चीज गिरा देता है। मेरी नींद टूट जाती है। अब देखिये मेरा ताव? बच्चेके कान मैंने गरम न किये, उसकी पीठ लाल न की तो कहिये!

× × ×

जरूरी कामसे पैदल जाना है। रास्तेमें चप्पल बोल गयी। मेरे गुस्सेका पार नहीं है। पासमें कहीं मोची न मिले, अथवा मरम्मतके लिये जेबमें पैसे न हों और श्रीमती चप्पलको हाथमें लटकाकर ले चलना पड़े तो मेरा क्रोध देखते ही बनता है!

× × ×

रिक्शा पंचर हो गया या 'क्यू'में दूर खड़े होनेसे टिकट मिलनेमें देर हो गयी और प्लेटफार्मपर पहुँचते-पहुँचते सीटी देकर ट्रेन चल पड़ी। मैं सचमुच रेल देखता रह गया। अब देखिये मेरा क्रोध!

× × ×

दिनभरका थका बिस्तरपर पड़ा हूँ। आँखें नींदसे भारी हैं। ऐसे समय नीचेसे खटमल, ऊपरसे मच्छर काटना शुरू कर देते हैं। अब देखिये मेरा ताव!

परंतु कितना ही भारी मत्कुण-यज्ञ करूँ, कैसी भी अच्छी मसहरी लगाऊँ, जान बचनेवाली है? परंतु चौकीको धूपमें डालकर उसपर गरम पानी छिड़ककर भी भला मेरा क्रोध शान्त होनेवाला है?

× × ×

बच्चे रोते हैं, बीमार पड़ते हैं, रातमें सोना हराम कर देते हैं। शरीर थकावटसे चूर है, परंतु तापमान लेनेके लिये जागना है, दवा वक्तपर देनेके लिये जागना है। डॉक्टरका दरवाजा खटखटाना है। अब देखिये, मेरा पल-पलपर बढ़नेवाला क्रोध!

× × ×

मुझे दुर्बल पाकर कोई गाली दे देता है, पीट देता है। मेरा कसूर हो तब भी मुझे गुस्सा आता है, फिर बिना

कसूर यदि कोई मार बैठे तो फिर मेरा क्रोधित होना स्वाभाविक ही है।

× × ×

मतलब, जब मेरे आराममें बाधा पड़ती है, सुखोपभोगमें कोई अड़चन आ जाती है, तो मेरा क्रोध भड़क उठता है। फिर वह गरमीमें उमस होनेसे हो, बाहर जाते समय तालीका गुच्छा खो जानेसे हो, जरूरतके वक्त जरूरी चीजके न मिलनेसे हो, समयपर बर्तन मलनेके लिये दाईके न आनेसे हो, खाना बननेके पहले ही आँच चली जानेसे हो, किसी चीजके खो जानेसे हो, बच्चोंके जिद करनेसे हो, समयपर गाढ़ी मेहनतकी कमाई न मिलनेसे हो, परीक्षामें असफल हो जानेसे हो, बरसातमें पैर फिसलकर गिर जानेसे हो, बीमार पड़ जानेसे हो, समयपर उधार गयी चीज या रकम वापस न मिलनेसे हो अथवा और ही किसी कारणसे हो। मेरे स्वार्थमें मेरे आराममें बाधा आयी नहीं कि मेरा क्रोध उबला!

× × ×

लेकिन, यहींतक बस नहीं।

मेरे क्रोधके और भी कितने ही कारण हैं।

मुझमें कूट-कूटकर अनेक दुर्गुण भरे पड़े हैं। मगर मैं यह नहीं चाहता कि मेरी कमजोरियोंका कोई पर्दाफाश करे! जब कोई व्यक्ति मेरे आत्मसम्मानको ठेस लगाता है, मेरी ख्यातिपर प्रहार करता है, दूसरोंकी दृष्टिमें मुझे गिरानेकी चेष्टा करता है, मुझे उचितसे कम आदर देता है अथवा किसी भी प्रकारसे मेरे अहंकारपर ठोकर मारता है तो मेरे तावका ठिकाना नहीं रहता!

× × ×

मेरी पत्नी, मेरे छोटे भाई, बहन, मेरे बच्चे, मेरे अधीनस्थ कर्मचारी जब मेरी बात नहीं सुनते, मेरे आदेशोंका अक्षरशः पालन नहीं करते अथवा मेरी रुचि और इच्छाके विपरीत कोई काम करते हैं, तो मेरा गुस्सा दर्शनीय बन बैठता है!

× × ×

मेरी झूठी शानमें ठेस लगी नहीं, मेरी कमजोरियोंपर किसीने उँगली उठायी नहीं कि एड़ीसे लेकर चोटीतक मेरा सारा शरीर क्रोधसे जल उठता है।

× × ×

निन्दा और अपमान होनेपर, उपेक्षा और तिरस्कार होनेपर तो मेरा ही क्या, बड़े-बड़ोंका आसन डोल जाता है। चिढ़ानेपर, तिरस्कृत होनेपर मेरे क्रोधका पार नहीं रहता। मेरी शारीरिक अयोग्यतापर, मेरी जाति, वर्ण, कुल, विद्या, बुद्धि आदिपर कोई आक्षेप कर भर दे, मुझे चोट लग जानेपर, मेरे गिर जानेपर कोई हँस भर दे, मुसकरा भर दे, मेरा मखौल भर उड़ाये, तब देखिये मेरा लाल होना।

× × ×

कोई व्यक्ति जब मुझपर व्यंग्य कसता है, मुझपर कार्टून बनाता है, मित्रमण्डलीमें, परिचितोंमें, सभा-सोसाइटीमें, क्लब या गोष्ठीमें निरादर करता है, मजाक उड़ाता है, व्याजसे भी कहीं मेरी निन्दा करता है तो मेरा रोम-रोम क्रोधसे जलने लगता है!

× × ×

यह मत समझ लीजिये कि सिर्फ इतनी ही बातोंपर मेरा क्रोध भड़कता है। मेरे क्रोधके कारणोंकी सूची बहुत लम्बी है। जैसे—

मेरा कोई साथी अथवा मेरे अधीन काम कर चुकनेवाला कोई व्यक्ति जब धनसम्पत्तिमें, मान-सम्मानमें मुझसे बाजी मार ले जाता है, तो मेरा क्रोध फुफकार उठता है—'हैं, मैं जहाँ-का-तहाँ पड़ा हूँ और यह मुझसे इतना आगे बढ़ गया!....'

× × ×

मुझे अनिद्राका रोग है, नींद नहीं आती, चिन्ताएँ आठ पहर चौंसठ घड़ी घेरे रहती हैं और कोई दूसरा मेरे सामने ही खर्राटेकी नींद लेता है, निश्चिन्त जीवन व्यतीत करता है, मौज-मस्तीसे जिन्दगीके दिन काटता है, यह देख मेरे क्रोधका पार नहीं रहता!

× × ×

मैं भले ही झूठ बोलता रहूँ, '**अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो**' की नीति अपनाता रहूँ, पर मुझे यह बर्दाश्त नहीं होता कि कोई दूसरा व्यक्ति झूठ बोले अथवा असलियतपर पर्दा डाले!

× × ×

मैं दुनियाभरकी खुराफातें करता रहूँ, परंतु दूसरेसे कोई सामान्य-सा भी अपराध बन पड़े, तो मैं उसे क्षमा करनेकी बात भी नहीं सोच सकता! ऐसे मौकोंपर मेरा क्रोध देखते ही बनता है!

× × ×

'धोबीसे बस न चला तो गदहेके कान उमेठ दिये!'—इस तथ्यको मैंने जी-जानसे पकड़ रखा है। दफ्तरमें बड़े

बाबू जिस दिन मुझपर अपना ताव उतारते हैं, उस दिन मेरी पत्नी और बच्चे उस तावके शिकार न बने तो मैं ही क्या!

× × ×

अपनी बेवकूफियाँ मेरी दृष्टिमें नगण्य रहती हैं, पर दूसरोंकी बेवकूफियोंपर मेरा बिगड़ उठना मेरे लिये स्वाभाविक है।

भले ही मेरा दृष्टिकोण गलत हो, पर वाद-विवादमें कोई मेरे पक्षको चुनौती दे, फिर देखिये मेरा क्रोध!

× × ×

बच्चे पढ़ाईमें यदि मेरी आशाके अनुरूप प्रगति न करें अथवा व्यवहारमें ठीक वैसा न करें, जैसा बुजुर्गोंको करना चाहिये, फिर देखिये मेरा ताव। मार-मारकर उन्हें उत्तू बनाये बिना मैं मान नहीं सकता!

× × ×

'टाकाय टाका बाढ़े!' किसीको क्रोधित होते देख मैं भी क्रुद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। पत्थरका जवाब पत्थरसे देनेमें मैं माहिर हूँ। ईसाका वह पर्वतवाला उपदेश मुझे फूटी आँख नहीं सुहाता कि 'कोई तुम्हारे दायें गालपर थप्पड़ मारे तो तुम उसके आगे बायाँ गाल भी कर दो!'

× × ×

अमुक व्यक्ति तुम्हारे खिलाफ ऐसा-ऐसा कह रहा था—यह बात कोई मुझसे आकर कह दे, बस, असलियतका कुछ भी पता लगाये बिना मैं क्रोधके हाथका खिलौना बन बैठता हूँ। बातका बतंगड़ बनते देर नहीं लगती।

× × ×

भले ही न्याय और सदाचारसे मैं कोसों दूर रहूँ, पर मेरे सामने कोई अन्याय और दुराचार कर तो जाय! अपराधीको दण्ड देनेके लिये मैं तत्काल कानूनको अपने हाथमें उठा लेता हूँ!

× × ×

तात्पर्य यह कि सुबहसे शामतक और शामसे सुबहतक एक-दो नहीं, कभी-कभी सैकड़ों ऐसे प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं, जब मैं उत्तेजित हो उठता हूँ, मेरी शान्ति मेरा पल्ला छुड़ाकर भाग जाती है और मैं क्रोधके हाथोंकी कठपुतली बन बैठता हूँ। जहाँ मेरे स्वार्थमें कोई बाधा पड़ी, जहाँ मेरी इच्छाके प्रतिकूल कुछ हुआ, मेरे आराममें खलल पड़ा, जहाँ कोई काम बिगड़ा, जहाँ कोई चीज खराब हुई, जहाँ किसीने मारा-पीटा, गाली बकी, व्यंग्य किया, निन्दा की, मेरे खिलाफ कुछ कहा, कुछ किया—बस, क्रोधदेवता हाज़िर!

× × ×

'कामात्क्रोधोऽभिजायते!'

कामसे तो क्रोध आता ही है, लोभसे भी क्रोध आता है। मोहसे भी क्रोध भड़कता है।

मद और मात्सर्यसे भी क्रोधका जन्म होता है। कहा नहीं जा सकता कि हमारे अन्तस्का कौन विकार कब क्रोधका रूप धारण कर लेगा।

× × ×

उत्तेजनाके ये क्षण रात-दिनमें न जाने कितनी बार उपस्थित होते हैं। रोज हम कितने ही लोगोंके सम्पर्कमें आते हैं। सबके स्वार्थ अलग, सबके स्वभाव अलग, सबकी प्रकृति अलग, सबकी रुचि अलग, सबके रुझान अलग। हाथकी पाँच अँगुलियाँ जब एक-सी नहीं, तब दूसरे लोगोंकी तो बात ही क्या? एक पेटके जाये चार बेटे चार तरहके होते हैं। फिर यह आशा ही कैसे की जा सकती है कि सारी दुनिया मेरी ही रुचिके अनुसार घूमेगी?

और जहाँ किसीने कोई बात मेरी रुचिके प्रतिकूल की कि मुझे क्रोध आया! मेरी इच्छाके विपरीत कुछ हुआ कि मैं उत्तेजित हुआ!

× × ×

क्रोध जब आता है तो मेरा चेहरा लाल हो जाता है, भौंहें तन जाती हैं, आँखें लाल हो उठती हैं, नथुने फूल जाते हैं, नाक लाल हो जाती है, साँस तेजीसे चलने लगती है, जुबान बेलगाम हो जाती है, मुट्ठियाँ बँध जाती हैं, शरीरका रोम-रोम उत्तेजनासे भर उठता है!

क्रोधके आते ही मेरी शान्ति हवा हो जाती है, विवेक झख मारा करता है, बुद्धिका दिवाला खिसक जाता है, तन-बदनका सारा होश जाता रहता है और उस हालतमें मैं कुछ भी कर सकता हूँ।

क्रोधके आवेशमें मैं गाली बक सकता हूँ, व्यंग्य कस सकता हूँ। स्त्री-बच्चोंपर ही नहीं, दूसरोंपर भी हाथ उठा सकता हूँ, कोई भी कुकृत्य कर सकता हूँ, भले ही बादमें उसके लिये पछताना पड़े।

उत्तेजनाके क्षणोंमें मैं मार-पीट, खून-कत्लतक कर सकता हूँ। और क्या नहीं कर सकता?

× × ×

क्रोधका परिणाम किसीसे छिपा नहीं। जेलोंकी आबादी आधी भी नहीं रहती, यदि मानव क्रोधपर विजय प्राप्त कर पाता। वहाँ काम, क्रोध और लोभके ही शिकार तो चारों ओर दिखायी पड़ते हैं।

लखनऊ सेण्ट्रल जेलमें ४२ में एक सीधे-सादे कैदीसे जब मैंने पूछा—'भाई! तुम क्यों यहाँ चले आये? तुम तो बहुत सीधे, ईमानदार और शान्त जान पड़ते हो!' तो वह बहुत शर्माकर बोला—'क्या बताऊँ भाईजी! ससुरालमें जोरूकी बिदा कराने गया था। उन लोगोंने उस समय उसे भेजनेसे इनकार किया। मुझे गुस्सा आ गया और मैंने गँड़ासा उठाकर बीबीकी ही गर्दन उड़ा दी! अब जिन्दगीभर जेल काटनी है!'

× × ×

क्रोध अत्यन्त भयंकर मानसिक विकार है। आज घर-घरमें इतना लड़ाई-झगड़ा, द्वेष, घृणा और झिकझिक दीख पड़ती है, उसका मूल कारण यह क्रोध ही है।

क्रोध प्रकट होता है तो कटुवाणीमें, तू-तू, मैं-मैं, गाली-गलौजमें, मार-पीट और कत्लमें। दबा रहता है तो घृणा और द्वेषका रूप पकड़ लेता है और मौका मिलते ही ज्वालामुखीकी तरह फट पड़ता है!

बीमारियाँ तो क्रोधसे न जाने कितनी पैदा होती हैं। चिन्ता, स्नायुदौर्बल्य, रक्तचाप, मिरगी, बेहोशी, पागलपन आदि न जाने क्या-क्या हो जाता है क्रोधके कारण! कहते हैं, क्रोधसे विषाक्त माताका दूध पीनेसे बच्चेकी मृत्युतक होनी सम्भव है।

× × ×

व्यक्तिका क्रोध समाजमें फैलता है, समाजका राष्ट्रमें और राष्ट्रका सारे संसारमें। विश्वयुद्धोंका जनक क्रोध ही है। एटम बम, हाइड्रोजन बम आदिके भीतर हमारा यह क्रोध ही तो सिमटा-सिकुड़ा बैठा है। इसके फटनेकी देर है कि मीलोंतक सर्वनाशका ताण्डव होने लगता है।

× × ×

जो क्रोध इतना भयंकर है, जो क्रोध आननफानन लाखका घर खाक कर देता है, जो क्रोध जेल, कालापानी और फाँसीतक पड़नेके लिये विवश कर देता है, जिस क्रोधकी परिणति दु:ख और हाहाकारमें ही होती है, उसी क्रोधके विषयमें मैंने लोगोंको कहते सुना है—'क्रोधके बिना भी भला संसारका काम चल सकता है?' वे कहते हैं—

अति सीधे मति होइये, कछुक व्यंग मन माहिं।
सीधी लकड़ी काटि लें, टेढ़ी काटैं नाहिं॥

स्वामी रामतीर्थने इसका बड़ा सटीक उत्तर दिया है—'हम यह पूछते हैं कि क्या यह सच है कि 'टेढ़ी काटैं नाहिं?' सच तो यह है कि समयपर सब कट जाती हैं, क्या सीधी और क्या टेढ़ी। केवल आगे-पीछेका भेद है। कटनेमें सब बराबर हैं।'

'हाँ, अगर सचमुच अन्तर है तो यह है कि टेढ़ी लकड़ी काटी जाकर प्राय: जलायी जाती है, ईंधनके काम आती है और सीधी लकड़ी काटी जाकर जलायी नहीं जाती, वरं वह रंग-रोगनसे सजकर अमीरों, वृद्धों, महापुरुषों, शौकीनों, सुन्दरियोंके कर-कमलोंका दण्ड (डंडा) बनती है या यदि मोटी और भारी हो तो मन्दिरों, मकानोंमें शहतीरका काम देती है, स्तम्भका पद पाती है।'

'सीधी लकड़ी हर प्रकारसे अपनी पहली अवस्थाकी अपेक्षा उन्नति पाती और विकास-समन्वित होती है, जब कि टेढ़ीको अवनति और विनाश प्राप्त होता है।'

× × ×

अनुशासनके लिये कुछ लोग क्रोधको आवश्यक मानते हैं। उनका मत है कि क्रोधके बिना नौकर ढीठ हो जायँगे। दफ्तरोंका काम ठीकसे न चलेगा। लड़के बड़ोंका आदर न करेंगे। उनका कहना है कि क्रोध न किया जाय, पर इसका स्वाँग तो करना ही चाहिये। कारण—

सीधी उँगली घी जम्यो क्यों हूँ निकसे नाहिं।

× × ×

परंतु मैं जानता और मानता हूँ कि क्रोधका स्वाँग भी खतरेसे खाली नहीं। एक बार 'अभिमन्यु-वध' का नाटक खेला जा रहा था। बेटा अभिमन्यु बना था, पिताको उसपर गदाका प्रहार करना था। परंतु क्रोधके आवेशमें पिता भूल बैठा कि उसे स्वाँग ही करना है। गदा-प्रहारसे 'अभिमन्यु' की खोपड़ी दरअसल खुल गयी। स्वाँग असलियत बन बैठा। खूनके फव्वारोंसे सारा स्टेज रँग गया।

× × ×

नौकरों, छात्रों और बालकों, घर-दफ्तरोंमें अनुशासन लानेके लिये न क्रोधकी जरूरत है, न क्रोधके स्वाँगकी। दूसरोंमें अनुशासन लाना है तो पहले अपने-आपको अनुशासित करिये। आपको देखकर ही दूसरे लोग अनुशासनका पालन करने लगेंगे।

"Example is better than precept!"

× × ×

लीलामयकी लीलाएँ

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक दिन साँवरे-सलोने व्रजराजकुमार श्रीकन्हैया-लालजी अपने सूने घरमें स्वयं ही माखन चुरा रहे थे। उनकी दृष्टि मणिके खम्भेमें पड़े हुए अपने प्रतिविम्बपर पड़ी। अब तो वे डर गये। अपने प्रतिविम्बसे बोले—'अरे भैया! मेरी मैयासे कहियो मत। तेरा भाग भी मेरे बराबर ही मुझे स्वीकार है; ले खा। खा ले, भैया!' यशोदा माता अपने लालाकी तोतली बोली सुन रही थीं।

उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, वे घरमें भीतर घुस आयीं। माताको देखते ही श्रीकृष्णने अपने प्रतिविम्बको दिखाकर बात बदल दी—

'मैया! मैया! यह कौन है? लोभवश तुम्हारा माखन चुरानेके लिये आज घरमें घुस आया है। मैं मना करता हूँ, तो मानता नहीं है और मैं क्रोध करता हूँ तो यह भी क्रोध करता है। मैया! तुम कुछ और मत सोचना। मेरे मनमें माखनका तनिक भी लोभ नहीं है।'

अपने दुध-मुँहे शिशुकी प्रतिभा देखकर मैया वात्सल्य-स्नेहके आनन्दमें मग्न हो गयीं।

× × ×

एक दिन श्यामसुन्दर माताके बाहर जानेपर घरमें ही माखन-चोरी कर रहे थे। इतनेमें ही दैववश यशोदाजी लौट आयीं और अपने लाड़ले लालको न देखकर पुकारने लगीं—

'कन्हैया! कन्हैया! अरे ओ मेरे बाप! कहाँ है, क्या कर रहा है?' माताकी यह बात सुनते ही माखनचोर श्रीकृष्ण डर गये और माखन-चोरीसे अलग हो गये। फिर थोड़ी देर चुप रहकर यशोदाजीसे बोले—'मैया, री मैया! यह जो तुमने मेरे कंकणमें पद्मराग जड़ा दिया है, इसकी लपटसे मेरा हाथ जल रहा था। इसीसे मैंने इसे माखनके मटकेमें डालकर बुझाया था।'

माता यह मधुर-मधुर कन्हैयाकी तोतली बोली सुनकर मुग्ध हो गयीं और 'आओ बेटा!' ऐसा कहकर लालाको गोदमें उठा लिया और प्यारसे चूमने लगीं।

× × ×

एक दिन माताने माखनचोरी करनेपर श्यामसुन्दरको

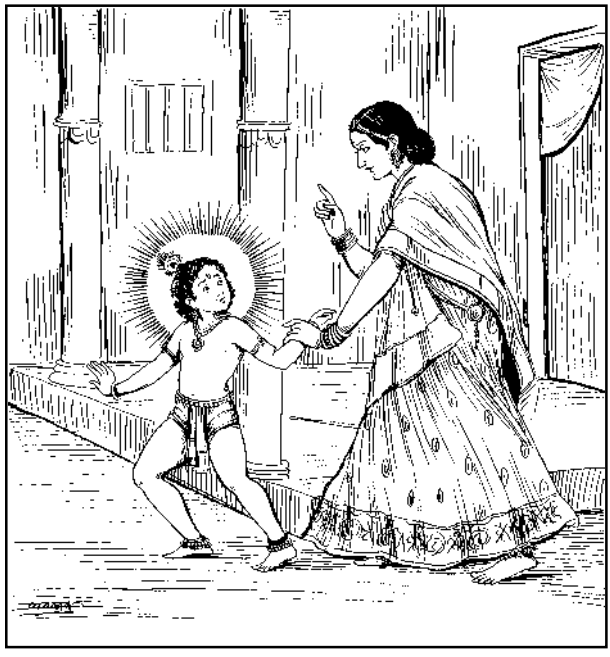

धमकाया, डाँटा-फटकारा। बस, दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। कर-कमलसे आँखें मलने लगे। ऊँ-ऊँ-ऊँ करके रोने लगे। गला रुँध गया। मुँहसे बोला नहीं जाता था। बस, माता यशोदाका धैर्य टूट गया। अपने आँचलसे अपने लाला कन्हैयाका मुँह पोछा और बड़े प्यारसे गले लगाकर बोलीं—'लाला! यह सब तुम्हारा ही है, चोरी नहीं है।'

× × ×

एक दिनकी बात है—'पूर्णचन्द्रकी चाँदनीसे मणिमय आँगन धुल गया था। यशोदा मैयाके साथ गोपियोंकी गोष्ठी जुड़ गयी थी। वहीं खेलते-खेलते कृष्णचन्द्रकी दृष्टि चन्द्रमापर पड़ी। उन्होंने पीछेसे आकर यशोदा मैयाका घूँघट उतार लिया। और अपने कोमल करोंसे उनकी चोटी खोलकर खींचने लगे और बार-बार पीठ थपथपाने लगे। 'मैं लूँगा, मैं लूँगा'—तोतली बोलीसे इतना ही कहते। जब मैयाकी समझमें बात नहीं आयी, तब उसने स्नेहार्द्र दृष्टिसे पास बैठी ग्वालिनोंकी ओर देखा। अब वे विनयसे, प्यारसे फुसलाकर श्रीकृष्णको अपने पास ले आयीं और बोलीं—

'लालन! तुम क्या चाहते हो, दूध!' श्रीकृष्ण—'न'। 'क्या बढ़िया दही?' 'ना'। 'क्या खुरचन?' 'ना!' मलाई? 'ना!' 'ताजा माखन?' 'ना' ग्वालिनोंने कहा—'बेटा! रूठो मत, रोओ मत। जो माँगोगे सो देंगी' श्रीकृष्णने धीरेसे कहा—'घरकी वस्तु नहीं चाहिये' और अँगुली उठाकर चन्द्रमाकी ओर संकेत कर दिया। गोपियाँ बोलीं—'अरे मेरे बाप! यह कोई माखनका लौंदा थोड़े ही है? हाय! हाय! हम यह कैसे देंगी? यह तो प्यारा-प्यारा हंस आकाशके सरोवरमें तैर रहा है।' श्रीकृष्णने कहा—'मैं भी तो खेलनेके लिये इस हंसको ही माँग रहा हूँ, शीघ्रता करो। पार जानेके पूर्व ही मुझे ला दो।'

अब और भी मचल गये। धरतीपर पाँव पीट-पीटकर और हाथोंसे गला पकड़-पकड़कर 'दो-दो' कहने लगे और पहलेसे भी अधिक रोने लगे। दूसरी गोपियोंने कहा—'बेटा! राम-राम। इन्होंने तुमको बहला दिया है। यह राजहंस नहीं है, यह तो आकाशमें ही रहनेवाला चन्द्रमा है।' श्रीकृष्ण हठ कर बैठे—'मुझे तो यही दो! मेरे मनमें इसके साथ खेलनेकी बड़ी लालसा है। अभी दो, अभी दो।' जब बहुत रोने लगे, तब यशोदा माताने गोदमें उठा लिया और प्यार करके बोलीं—'मेरे प्राण! न यह राजहंस है और न तो चन्द्रमा। यह है माखन ही, परंतु तुमको देनेयोग्य नहीं है। देखो, इसमें वह काला-काला विष लगा हुआ है। इससे बढ़िया होनेपर भी इसे कोई नहीं खाता है।' श्रीकृष्णने कहा—'मैया! मैया! इसमें विष कैसे लग गया?' बात बदल गयी। मैयाने गोदमें लेकर मधुर-मधुर स्वरसे कथा सुनाना प्रारम्भ किया। माँ-बेटेमें प्रश्नोत्तर होने लगे।

यशोदा—'लाला! एक क्षीरसागर है।'

श्रीकृष्ण—'मैया! वह कैसा है?'

यशोदा—'बेटा! यह जो तुम दूध देख रहे हो, इसीका एक समुद्र है।'

श्रीकृष्ण—'मैया! कितनी गायोंने दूध दिया होगा, जब समुद्र बना होगा?'

यशोदा—'कन्हैया! वह गायका दूध नहीं है।'

श्रीकृष्ण—'अरी मैया! तू मुझे बहला रही है, भला बिना गायके दूध कैसे?'

यशोदा—'वत्स! जिसने गायोंमें दूध बनाया है, वह गायके बिना भी दूध बना सकता है।'

श्रीकृष्ण—'मैया! वह कौन है?'

यशोदा—'वह भगवान् हैं; परंतु अग (उनके पास कोई जा नहीं सकता) है।

श्रीकृष्ण—'अच्छा ठीक है, आगे कहो।'

यशोदा—'एक बार देवता और दैत्योंमें लड़ाई हुई। असुरोंको मोहित करनेके लिये भगवान्‌ने क्षीरसागरको मथा। मन्दराचलकी रई बनी। वासुकि नागकी रस्सी। एक ओर देवता लगे, दूसरी ओर दानव।'

श्रीकृष्ण—'जैसे गोपियाँ दही मथती हैं, क्यों मैया?'

यशोदा—'हाँ बेटा! उसीसे कालकूट नामका विष पैदा हुआ।'

श्रीकृष्ण—'मैया! विष तो साँपोंमें होता है, दूधमें कैसे निकला?'

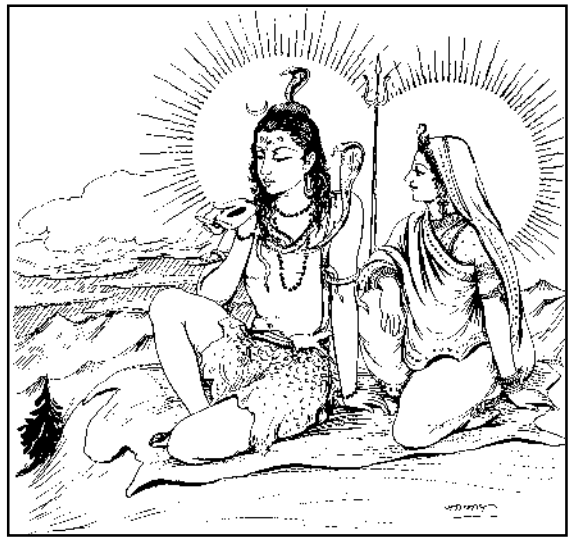

यशोदा—'बेटा! जब शंकर भगवान्‌ने वही विष पी लिया, तब उसकी जो फुइयाँ धरतीपर गिर पड़ीं, उन्हें पीकर साँप विषधर हो गये। सो बेटा! भगवान्‌की ऐसी कोई लीला है, जिसमें दूधमेंसे विष निकला।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा मैया! यह तो ठीक है।'

यशोदा—'बेटा! [चन्द्रमाकी ओर दिखाकर] यह मक्खन भी उसीसे निकला है। इसलिये थोड़ा-सा विष इसमें भी लग गया। देखो, देखो, इसीको लोग कलंक कहते हैं। सो मेरे प्राण तुम घरका ही मक्खन खाओ।'

कथा सुनते-सुनते श्यामसुन्दरकी आँखोंमें नींद आ गयी और मैयाने उन्हें पलंगपर सुला दिया।

स्थानका मनपर प्रभाव

(गोलोकवासी सन्त श्रीकेशवरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

एक बार श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीजी एक क्षेत्रमें प्रवेश कर रहे थे। छोटी-सी पगडंडी थी। यह ऐसी भूमि थी कि इसमें आनेके बाद लक्ष्मणजीके मनमें थोड़ा कुभाव आया।

लक्ष्मणजीके मनमें विचार आया कि कैकेयीने रामको वनवास दिया है, मुझे नहीं। मुझे वनमें भटकनेकी क्या आवश्यकता है? मैं राजाका पुत्र हूँ। मैं राजमहलमें रहकर सुख क्यों नहीं भोगूँ? मैं भाईके पीछे-पीछे चलता हूँ, परंतु बड़े भाईका मेरे ऊपर प्रेम कहाँ है? भाभी तो बैठी रहती हैं। सारा काम तो मुझे ही करना पड़ता है। इन लोगोंका मेरे ऊपर तनिक प्रेम नहीं। इन्होंने किसी दिन मुझसे पूछा भी नहीं कि लक्ष्मण! तूने भोजन किया या नहीं? तूने निद्रा ली या नहीं? इनके पीछे मुझे वनमें भटकनेकी क्या आवश्यकता है?

लक्ष्मणजीके मनमें श्रीसीतारामजीके प्रति ऐसा कुभाव आया। श्रीरामचन्द्रजी जान गये कि लक्ष्मणका मन आज थोड़ा बिगड़ा हुआ है। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको आज्ञा की, 'लक्ष्मण! इस क्षेत्रकी थोड़ी-सी मिट्टी तो ले लो।' लक्ष्मणजीने थोड़ी मिट्टी ली, उसकी पोटली बनाकर अपने साथ रख ली।

यह मिट्टी जब-जब लक्ष्मणजीके पास होती, तब-तब लक्ष्मणजीके मनमें बुरा विचार आता था कि रामजीकी सेवा करनेकी मुझे क्या आवश्यकता है? मैं घर लौट जाऊँ अर्थात् अयोध्या चला जाऊँ। मेरी पत्नी उर्मिला वहाँ है। मैं वहाँ सुख भोगूँ। रामजीके पीछे-पीछे भटकनेसे मुझे कोई लाभ नहीं।

लक्ष्मणजी स्नान करते समय पोटलीको अलग रख देते थे। स्नान करते ही मन पवित्र हो जाता और उस समय उनके मनमें ऐसा विचार आता कि श्रीसीतारामजी तो प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। मुझे इनकी सेवाका लाभ मिला है। मुझे संसारका कोई सुख भोगना नहीं। मुझे अपना जीवन सफल करना है।

मिट्टीकी पोटली पास होती, उस समय लक्ष्मणजीके मनमें बुरा विचार आता था और उस मिट्टीको छोड़ देते थे, उस समय मनमें पवित्र भावना जग जाती। तीन-चार दिनतक ऐसा होता रहा। लक्ष्मणजीको आश्चर्य हुआ। अन्तमें एक दिन लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा कि 'मुझे ऐसा क्यों होता है?' लक्ष्मणजीने रामजीसे ऐसा होनेका कारण पूछा।

रामचन्द्रजीने कहा—'लक्ष्मण! इसमें तुम्हारा दोष नहीं। यह मिट्टी ही उसका कारण है। यह मिट्टी तुम फेंक दो। जिस भूमिमें जो प्रवृत्ति होती है, उसके परमाणु उस भूमिमें और उस भूमिके वातावरणमें रहते हैं। यह जिस क्षेत्रकी मिट्टी है, उस क्षेत्रमें बहुत वर्ष पहले सुन्द और उपसुन्द नामके दो राक्षस रहते थे।'

श्रीरामचन्द्रजीने सुन्द-उपसुन्दकी समस्त कथा सुनायी—ये दोनों सगे भाई थे। दोनोंके बीच अतिशय प्रेम था। इन दोनों राक्षसोंने उग्र तपश्चर्या की। उनके तपसे ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये। ब्रह्माजीने कहा—'वरदान माँगो।'

दोनों भाइयोंने माँग की कि 'हमको कोई मार न सके, ऐसा वरदान दो।' ब्रह्माजीने कहा—'जिसका जन्म होता है, उसको मरना तो पड़ता ही है। तुम मरनेकी कोई

शर्त रख लो।'

दोनों भाइयोंके बीच अतिशय प्रेम था। इस कारण दोनोंने विचार किया कि हममें कोई भी दिन विरोध तो होना नहीं, वैर भी होना नहीं, इसलिये किसी भी दिन हम एक-दूसरेको मारनेवाले हैं नहीं। इसलिये हमारे अमर होनेका यही एक उपाय है। इस प्रकार मरनेकी बात भी रह जायगी और कभी मरण सम्भव भी नहीं होगा। ऐसा विचार करके उन्होंने ब्रह्माजीसे माँगा कि 'हमको दूसरा कोई नहीं मार सके। हम दोनों भाइयोंके बीच किसी दिन झगड़ा हो तो भले ही हमारा मरण हो जाय, परंतु अन्य कोई भी हमको मार सके नहीं, ऐसा वरदान दीजिये।' ब्रह्माजीने कहा—'ऐसा ही होगा।'

तपके प्रतापसे दोनों राक्षसोंकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी थी। शक्तिका दुरुपयोग करे, वही राक्षस। शक्तिका सदुपयोग करे, वही देवता। तुम राक्षस हो या देवता हो, इस बातका तुम्हीं विचार करके निश्चय करो। प्रभुने तुमको जो कुछ शक्ति दी है, उसका तुम सदुपयोग करते हो तो तुम देवता हो। पवित्र विचार करनेके लिये प्रभुने मन दिया है। मनमें अद्भुत शक्ति रहती है। मन जब ईश्वरके स्वरूपमें लीन होता है, तब उसकी शक्तिका विकास होता है और जब मन विषयोंमें भटकता है, तब उसकी शक्तिका विनाश होता है। ईश्वरकी जीवके ऊपर अनन्त कृपा होती है। प्रभुने जीवको शक्तिके अलावा और भी अधिक दिया है, परंतु जीवको उसका उपयोग करना आता नहीं।

इन राक्षस भाइयोंकी—सुन्द और उपसुन्दकी शक्ति बहुत बढ़ गयी। तब वे इन्द्रादिक देवताओंको त्रास देने लगे। देवता ब्रह्माजीके पास गये और ब्रह्माजीसे कहा—'आपने इनको वरदान दिया है, इसलिये ये किसीके हाथोंसे नहीं मरते, इनको दूसरा कोई मार सकता नहीं।'

ब्रह्माजीने युक्ति की। इन्होंने तिलोत्तमा नामकी एक अप्सरा उत्पन्न की और तिलोत्तमासे कहा—'इन दोनों भाइयोंमें तू वैर उत्पन्न कर। अप्सरा तिलोत्तमा सुन्द-उपसुन्द जहाँ रहते थे, वहाँ गयी। उस सुन्दर अप्सराको देखते ही सुन्दको ऐसा विचार हुआ कि यह मुझको मिले, उपसुन्दको भी ऐसा विचार हुआ कि मुझको

मिले। दोनों भाइयोंमें झगड़ा होने लगा, अप्सराने कहा—'मैं तुममें-से एकके साथ लग्न करनेको तैयार हूँ।'

सुन्द उपसुन्दसे कहने लगा—'यह मेरी है। यह तेरी भाभी है।' उपसुन्दने कहा—'यह तेरी भाभी है, यह तो मेरी है।' 'मेरी-मेरी' कहते-कहते मारा-मारीपर आ गये। दोनोंका मरण हो गया।

श्रीरामचन्द्रजीने सुन्द-उपसुन्दकी कथा बताते हुए लक्ष्मणजीसे कहा—'इस भूमिमें वैरके संस्कार आये हुए हैं। दो सगे भाई इस भूमिपर परस्पर युद्ध करके मरे हैं। भूमिका असर मनके ऊपर होता है।'

भक्तिपथके पाँच बड़े काँटे

इनसे बचो और इन्हें उखाड़ फेंकनेका प्रयत्न करो—

जातिविद्यामहत्त्वं च रूपं यौवनमेव च। यत्नेन परिहर्तव्यः पंचैते भक्तिकंटकाः॥

ऊँची जातिका अभिमान, विद्याका घमण्ड, धन, ऐश्वर्य और पदगौरवका महत्त्व, शरीरका सौन्दर्य और उछलती जवानी! यही पाँच काँटे हैं। [**सत्संगके बिखरे मोती**]

साधकोंके प्रति—

तत्त्वज्ञान

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

❀ परमात्मतत्त्वका ज्ञान करण-निरपेक्ष है। इसलिये उसका अनुभव अपने-आपसे ही हो सकता है, इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि आदि करणोंसे नहीं।

❀ जबतक नाशवान् वस्तुओंमें सत्यता दीखेगी, तबतक बोध नहीं होगा।

❀ बोध होनेपर अपनेमें दोष तो रहते नहीं और गुण (विशेषता) दीखते नहीं।

❀ जो हमारा स्वरूप नहीं है, उसका त्याग (सम्बन्ध-विच्छेद) कर दिया जाय तो जो हमारा स्वरूप है, उसका बोध हो जायगा।

❀ साधकमें कोई भी आग्रह नहीं रहना चाहिये, न द्वैतका, न अद्वैतका। आग्रह रहनेसे बोध नहीं होता।

❀ जबतक अहम् है, तबतक तत्त्वज्ञानका अभिमान तो हो सकता है, पर वास्तविक तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता।

❀ जबतक अपनेमें राग-द्वेष हैं, तबतक तत्त्वबोध नहीं हुआ है, केवल बातें सीखी हैं।

❀ तत्त्वज्ञान होनेमें कई जन्म नहीं लगते, उत्कट अभिलाषा हो तो मिनटोंमें हो सकता है, क्योंकि तत्त्व सदा-सर्वदा विद्यमान है।

❀ तत्त्वज्ञान अभ्याससे नहीं होता, प्रत्युत अपने विवेकको महत्त्व देनेसे होता है। अभ्याससे एक नयी अवस्था बनती है, तत्त्व नहीं मिलता।

❀ जबतक तत्त्वज्ञान नहीं हो जाता, तबतक सब प्राणी कैदी हैं। कैदीका लक्षण है—पापकर्म करे अपनी मरजीसे और दुःख भोगे दूसरेकी मरजीसे।

❀ 'मैं ब्रह्म हूँ'—यह अनुभव नहीं है, प्रत्युत अहंग्रह-उपासना है। इसलिये तत्त्वज्ञान होनेपर 'मैं ब्रह्म हूँ'—यह अनुभव नहीं होता।

❀ तत्त्वज्ञान होनेपर काम-क्रोधादि विकारोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है।

❀ जबतक हमारी दृष्टिमें असत्‌की सत्ता है, तबतक विवेक है। असत्‌की सत्ता मिटनेपर विवेक ही तत्त्वज्ञानमें परिणत हो जाता है।

❀ अपनेमें और दूसरोंमें निर्दोषताका अनुभव होना तत्त्वज्ञान है, जीवन्मुक्ति है।

❀ तत्त्वज्ञान होनेपर ज्ञानी पुरुष परिस्थितिसे रहित नहीं होता, प्रत्युत सुख-दुःखसे रहित होता है।

❀ तत्त्वज्ञान शरीरका नाश नहीं करता, प्रत्युत शरीरके सम्बन्धका अर्थात् अहंता-ममताका नाश करता है।

❀ तत्त्वज्ञान अर्थात् अज्ञानका नाश एक ही बार होता है और सदाके लिये होता है।

❀ जैसा है, वैसा अनुभव कर लेनेका नाम ही 'ज्ञान' है। जैसा है नहीं, वैसा मान लेनेका नाम 'अज्ञान' है।

❀ एक भगवत्तत्त्व अथवा परमात्मतत्त्व ही वास्तविक तत्त्व है, उसके सिवाय सब अतत्त्व हैं।

❀ मिलनेवाली प्रत्येक वस्तु बिछुड़नेवाली होती है, पर जो नित्यप्राप्त परमात्मतत्त्व है, वह कभी किसी अवस्थामें भी नहीं बिछुड़ता, चाहे हमें उसका अनुभव हो अथवा न हो।

❀ परमात्मतत्त्वका वर्णन नहीं होता, प्रत्युत अनुभव होता है।

❀ परमात्मतत्त्वके सिवाय अन्यकी जितनी भी स्वीकृति है, उतना ही अज्ञान है।

❀ सम्पूर्ण देश, काल, क्रिया, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति, घटना आदिका अभाव होनेपर भी जो शेष रहता है, वही परमात्मतत्त्व है।

❀ वास्तवमें भगवान् भी विद्यमान हैं, गुरु भी विद्यमान हैं, तत्त्वज्ञान भी विद्यमान है और अपनेमें योग्यता और सामर्थ्य भी विद्यमान है। केवल नाशवान् सुखकी आसक्तिसे ही उनके प्रकट होनेमें बाधा लग रही है।

तुलसी-जयन्तीपर विशेष—

'तुलसी कथा रघुनाथ की'

(जयदीप सिंह)

भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' का उद्घोष करती है। संसारके प्राणिमात्रका मंगल हो—यह उसका मूल स्वर है। इस आधारपर यदि समीक्षा की जाय तो गोस्वामी तुलसीदासजीद्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस भारतीय संस्कृतिका प्रतिनिधि ग्रन्थ है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम इस ग्रन्थरत्नके नायक हैं। उनके गुण-समूह जगत्का मंगल करनेवाले और भुक्ति, मुक्ति, धर्म और परम धामको देनेवाले हैं—

जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

(रा०च०मा०१। ३२। २)

जगज्जननी भगवती जनकनन्दिनी श्रीसीताजी, जो नारियोंकी आदर्श हैं, वे इस ग्रन्थकी नायिका हैं। इस ग्रन्थमें उनका महान् चरित वर्णित है। वे सृजन, पालन और संहार करनेवाली महाशक्ति तो हैं ही, साथ ही वे सम्पूर्ण मंगलमय कार्योंकी विधात्री (सर्वश्रेयस्करी) हैं—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

(रा०च०मा० १। मंगलाचरण श्लोक ५)

गोस्वामीजी इस मंगलमयी रामकथाके विषयमें कहते हैं कि मेरी कविता अवश्य ही भद्दी है, परंतु इसमें जगत्का कल्याण करनेवाली रामकथारूपी उत्तम वस्तुका वर्णन किया गया है, अत: वर्ण्य-विषयके आधारपर मेरी कविता भी अच्छी ही समझी जायगी—

भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी॥

(रा०च०मा० १। १०। १०)

अन्यत्र वे कहते हैं कि मेरे द्वारा विरचित इस ग्रन्थमें श्रीरघुनाथजीका उदार नाम है, जो अत्यन्त पवित्र है, वेद-पुराणोंका सार है, मंगलका भवन और अमंगलोंको हरनेवाला है, जिसे पार्वतीसहित भगवान् शिवजी सदा जपा करते हैं—

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

(रा०च०मा०१। १०। १-२)

श्रीरामचरितमानसकी रचनाके विषयमें गोस्वामीजी बताते हैं कि श्रीमहादेवजीने इसको रचकर अपने

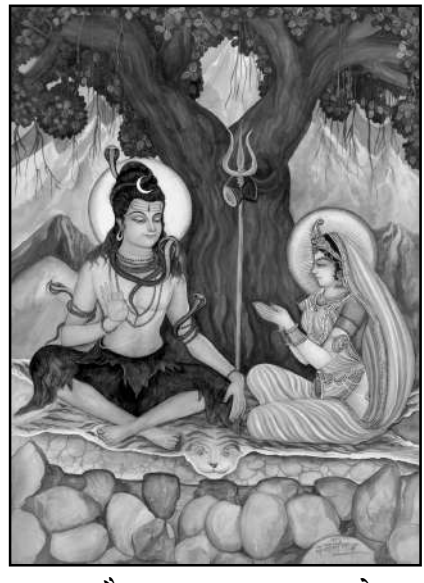

मनमें रखा था और सुअवसर पाकर इसे पार्वतीजीसे कहा। इसीसे शिवजीने इसको अपने हृदयमें देखकर और प्रसन्न होकर इसका सुन्दर 'रामचरितमानस' नाम रखा—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥

(रा०च०मा०१। ३५। ११-१२)

इस रामकथाके आदिवक्ता भगवान् शिव हैं, सब लोगोंका हित करनेके लिये पार्वतीजीने इसे पूछा था—

कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥

(रा०च०मा०१। १०७। ६)

इस प्रश्नके उत्तरमें शिवजी कहते हैं, श्रीरामजीकी कथा जगत्को पवित्र करनेवाली गंगाजीके समान है। तुम्हारा श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अनुराग है, तुम्हारा यह प्रश्न तो जगत्के कल्याणके लिये है—

पूछेहुँ रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥

(रा०च०मा०१। ११२। ७-८)

श्रीरामकथा मंगलमयी होनेके साथ-ही-साथ

'कलिमलहरनि' अर्थात् कलिके दोषोंका हरण करनेवाली भी है। इसमें श्रीरघुनाथजीका सुन्दर यश वर्णित है और यह गंगाजी तथा महादेवजीके शरीरपर लगी भस्मकी भाँति स्मरणमात्रसे पवित्र करनेवाली है—

मंगल करनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

काकभुशुंडिजी कलियुगका वर्णन करते हुए कहते हैं—हे पक्षिराज गरुड़जी! कलियुगमें कपट, हठ (दुराग्रह), दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह एवं काम आदि षड्रिपु और मद ब्रह्माण्डभरमें छा जाते हैं—

सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥

(रा०च०मा० ७।१०१क)

रामकथा कलियुगके उपर्युक्त समस्त दोषोंका शमन करनेवाली है। यह पाप, सन्ताप और शोकका नाश करनेवाली तथा इहलोक और परलोकमें प्रिय करनेवाली है। यह विचार (ज्ञान)-रूपी राजाके शूरवीर मन्त्रीकी भाँति और लोभरूपी अपार समुद्रको सोखनेके लिये अगस्त्यमुनिकी भाँति है। भक्तजनोंके मनरूपी वनमें बसनेवाले काम, क्रोध और कलियुगके पापरूपी हाथियोंको मारनेके लिये यह रामकथा सिंह-शावककी भाँति है और दरिद्रतारूपी दावानलको बुझानेके लिये कामनाको पूर्ण करनेवाला मेघ है—

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥
काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

(रा०च०मा०१।३२।५—८)

श्रीरामजीके गुण-समूह कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल और कलियुगके कपट, दम्भ और पाखण्डको जलानेके लिये वैसे ही हैं, जैसे ईंधनके लिये प्रचण्ड अग्नि होती है—

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥

(रा०च०मा०१।३२क)

श्रीरामकथा भारतवर्षके आदर्श स्वरूपकी कथा है। इसमें आदर्श राजा, आदर्श प्रजा, आदर्श परिवार, आदर्श भातृप्रेम, आदर्श मित्र और आदर्श सेवकका सम्यक् रूपसे दिग्दर्शन कराया गया है। भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य और सदाचारकी शिक्षा देनेवाले अनेक प्रसंग इसमें गुम्फित हैं। इस ग्रन्थरत्नमें जन-मानसको अपनी प्रत्येक समस्याका समाधान मिल जाता है, इसलिये यह गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, गृहस्थ-संन्यासी, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध—सभीमें अत्यन्त लोकप्रिय है।

इस ग्रन्थरत्नने भारतवर्ष विशेष रूपसे उत्तर भारतका बड़ा उपकार किया है। रीति, नीति, आचरण, व्यवहार—सब बातोंमें मानो गोस्वामीजी ही हिन्दू प्रजामात्रके पथ-प्रदर्शक हैं। प्रत्येक अवसरपर उनकी चौपाइयाँ उद्धृत की जाती हैं और जन-साधारणके लिये धर्मशास्त्रका काम देती हैं। इस ग्रन्थने न जाने कितनोंको डूबनेसे बचाया, कितनोंको कुमार्गपर जानेसे रोका, कितनोंके निराशामय जीवन-मन्दिरमें आशाका प्रदीप प्रज्वलित किया, कितनोंको घोर पापसे बचाकर पुण्य-संचयमें लगाया, कितनोंको धर्म-पथपर डगमगाते हुए चलनेमें सहारा देकर सँभाला और आज भी सँभालता चला आ रहा है तथा आगे आनेवाली पीढ़ियोंके लिये भी यह ग्रन्थरत्न मार्गदर्शक रहेगा।

अन्तमें बेनी कविके शब्दोंमें—

बेदमत सोधि, सोधि-सोधि कै पुरान सबै
संत औ असंतन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव
कौन रामनामहू की चरचा चलावतो॥
'बेनी' कवि कहै मानो-मानो हो प्रतीति यह
पाहन-हिये में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो॥

सफल राजनीतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण

(श्रीवासुदेवजी शर्मा)

महाभारतके युद्धमें जो विजयश्री पाण्डवोंको प्राप्त हुई, उसका सम्पूर्ण श्रेय तत्कालीन महान् राजनीतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्णको ही है। महाभारतका सारा इतिहास श्रीकृष्णकी राजनीतिज्ञतासे ओतप्रोत है। यह बात भी मानी हुई है कि श्रीकृष्ण-जैसे कुशल राजनीतिज्ञ अभीतक प्रकाशमें नहीं आये हैं। जिन राजनीतिज्ञोंको आप देख रहे हैं, उनकी राजनीति श्रीकृष्णकी राजनीतिपर ही अवलम्बित है अथवा यों कहिये कि उनकी राजनीति उक्त राजनीतिका अनुकरणमात्र है। महाभारत-कालका संक्षिप्त विवरण श्रीकृष्णकी राजनीतिज्ञताके दिग्दर्शनार्थ निम्न पंक्तियोंमें प्रस्तुत है—

जब पाण्डव अपने वनवासकी अवधि समाप्त कर चुके तो उनके पक्षके राजाओंने एक सभा की। उसमें बहुत सोच-विचारके बाद यह निश्चय हुआ कि पाण्डवोंने जिस उत्तम ढंगसे अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया है, वह प्रशंसनीय है और अब उनका राज-पाट उन्हें मिलना चाहिये; क्योंकि वनवासकी अवधि पूरी हो गयी है। परंतु दुर्योधनसे राज-पाट वापस प्राप्त होनेकी आशा बहुत कम है, सम्भव है इसके लिये युद्ध करना पड़े, अतएव एक दूत तो कौरवोंकी सभामें हस्तिनापुर भेजा जाय और एक उन राजाओंके पास भेजा जाय जो किसी कारणवश सभामें उपस्थित नहीं हो सके हैं। उनसे यह भी निवेदन कर दिया जाय कि आवश्यकता पड़नेपर वे लोग पाण्डवोंका ही पक्ष लें और यथाशक्ति उनकी सहायता करें; क्योंकि वे धर्म तथा न्यायके लिये लड़ रहे हैं।

कौरवोंकी सभामें हस्तिनापुर जाने और इस झगड़ेके निबटानेका भार भगवान् श्रीकृष्णको सौंपा गया; क्योंकि यह सभी जानते थे कि इस कार्यको उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी करनेमें समर्थ नहीं है। जब श्रीकृष्ण कौरवोंकी राजसभामें पहुँचे तो उन्होंने कौरवोंको अनेक प्रकारसे समझाया और पाण्डवोंको केवल इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयंत, वारणावत तथा एक अन्य गाँव, जो उचित समझें, देनेका प्रस्ताव रखा। दुर्योधन, जो बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था, समझ गया कि इन गाँवोंके माँगनेसे यह अभिप्राय है कि कौरव सदैव पाण्डवोंके आश्रित रहें और वैमनस्यका भी अन्त न हो; क्योंकि ये चारों स्थान कौरवराज्यकी सीमा बन जायँगे और पाण्डवोंको अपने प्रति किये गये व्यवहारकी सदा स्मृति दिलाते रहेंगे। अतएव दुर्योधनने इस प्रस्तावको अस्वीकार करते हुए श्रीकृष्णको स्पष्ट उत्तर दे दिया कि इन गाँवोंकी तो क्या, मैं सूईकी नोकके बराबर भी भूमि बिना युद्धके न दूँगा। यदि कुछ बाहुबलका भरोसा हो तो रणभूमिमें भाग्यकी परीक्षा कर लें।

श्रीकृष्ण असफल हो वहाँसे लौट आये और दोनों ओरसे खुल्लमखुल्ला युद्धकी तैयारी होने लगी। कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी और पाण्डवोंकी सात अक्षौहिणी सेना कुरुक्षेत्रके लम्बे-चौड़े मैदानमें आ उतरी। श्रीकृष्ण अर्जुनके रथवान् बने। उन्होंने अर्जुनके रथको उस समय विपक्षी सेनाका अनुमान लगानेके अभिप्रायसे बीचमें ले जाकर खड़ा कर दिया। जब अर्जुनने रणभूमिमें युद्ध करनेकी इच्छासे एकत्रित अपने मामा, चाचा, दादा, गुरु, मित्र और भाई आदि सम्बन्धियोंको देखा तो उसे आत्मग्लानि हुई और उसने श्रीकृष्णसे कहा—'मुझे ऐसी विजयकी कामना नहीं है, जिसे अपने सम्बन्धियोंका खून बहाकर प्राप्त किया जाय, मैं नहीं लड़ूँगा, आप मेरा रथ यहाँसे ले चलिये।' जब श्रीकृष्णने अर्जुनकी ऐसी दशा देखी तो सोचा कि यह तो बना-बनाया काम बिगड़ा जा रहा है। अत: वे अर्जुनको समझाने लगे।

'वीरश्रेष्ठ अर्जुन! प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह अपना कर्तव्य-पालन करे। कर्तव्य-पथसे एक पग भी इधर-उधर होना उचित नहीं है, कर्तव्य-पालन करते समय हानि-लाभ और जीवन-मरणका विचारतक मनमें नहीं आने देना चाहिये। हमारा कर्तव्य केवल कर्म करना है। फल परमात्माके हाथ है। जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रोंको उतारकर नये वस्त्र पहन लेते हैं, उसी प्रकार

यह मिट्टीका चोला शरीर बार-बार बदलता रहता है। आत्मा तो अमर है, उसे न तो कोई शस्त्र काट सकता है, न आग जला सकती है, न जल गला सकता है और न पवन सुखा सकता है। अर्जुन! तुम क्षत्रिय हो और इस समय युद्धक्षेत्रमें खड़े हो। तुम्हारा कर्तव्य धर्मयुद्ध करना है। सच्चे शूरमाओंकी तरह विजय पाओगे तो राज्य-सुख भोगोगे और रणमें वीरगतिको प्राप्त होनेपर स्वर्गके अधिकारी बन जाओगे। अब सब प्रकारकी चिन्ताएँ, शंकाएँ और संशय मनसे निकाल डालो। उठो और पुरुषसिंहकी भाँति अपना कर्तव्य-पालन करो।'

गीताके इस उपदेशका अर्जुनपर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा और वह युद्ध करनेके लिये तैयार हो गया। धृष्टद्युम्न पाण्डवोंकी सेनाके सेनापति बने और कौरवीय सेनाकी कमान भीष्मपितामहने सँभाली। दोनों ओरसे डटकर युद्ध होने लगा। पलमात्रमें खूनकी नदियाँ बह चलीं, दसों दिशाएँ शस्त्रोंकी झनकारसे गूँज उठीं। भीष्मजी पाण्डवोंकी सेनाका संहार गाजर-मूलीकी तरह करते हुए अपनी अपूर्व वीरताका परिचय देने लगे। इस प्रकार युद्ध होते हुए नौ दिन व्यतीत हो गये और ९०,००० पाण्डवोंके महारथी नष्ट हो गये। श्रीकृष्णने जब यह देखा तो सोचा कि इस प्रकार काम नहीं चलेगा। कोई युक्ति पितामहको समाप्त करनेकी सोचनी चाहिये। आखिर उपाय सोच ही लिया और तदनुसार युधिष्ठिरको भीष्मजीके पास भली प्रकार सिखा-पढ़ाकर भेज दिया। युधिष्ठिरने पहुँचते ही शिष्टाचारके अनुसार पितामहको प्रणाम किया। पितामहने आशीर्वाद दिया कि 'विजय हो।' युधिष्ठिरको अवसर मिल गया। उन्होंने कह ही तो डाला कि 'पितामह! आप तो पाण्डवोंकी सेनाका संहार करनेपर तुले हुए हैं। अबतक ९०,००० वीर नष्ट कर डाले हैं और न मालूम कितने करेंगे। फिर बताइये, आपके होते हुए विजय कैसे सम्भव है?' यह सुनकर भीष्म मुसकराये और युधिष्ठिरसे पूछा कि 'आखिर चाहते क्या हो?' युधिष्ठिरने कहा 'महाराज! हमें वह उपाय बतला दीजिये, जिससे आपकी मृत्यु हो।' चूँकि भीष्मजी प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे। अतः उन्होंने बताया कि 'मेरी प्रतिज्ञा है कि स्त्री अथवा स्त्रीके समान रूपवाले व्यक्तिके आनेपर मैं उसके साथ युद्ध नहीं करूँगा और उसी समय अर्जुनद्वारा मृत्युको प्राप्त होऊँगा।'

दसवें दिन बड़ा घमासान युद्ध हुआ। पाण्डवोंने उस समय शिखण्डी नामके एक सैनिकको, जो पहले स्त्री था और फिर योनिपरिवर्तन होनेसे पुरुष हो गया था, भीष्मके सामने खड़ा कर दिया। भीष्मजीने अपने प्रतिज्ञानुसार हथियार डाल दिये। अर्जुनने, जो पहलेसे ही शिखण्डीके पीछे छिपकर खड़ा हो गया था, अवसर प्राप्तकर पितामहको बाणोंकी सेजपर सुला दिया।

भीष्मपितामहके बाद ग्यारहवें दिन कौरवोंकी कमान द्रोणाचार्यको सौंपी गयी। उन्होंने रणमें अपनी कुशलताका परिचय भली प्रकार दिया, युधिष्ठिरको पकड़नेकी चालें चली जाने लगीं। पाण्डवोंके विनाशके लिये एक अभेद्य व्यूहरचना की गयी, इसके सम्बन्धमें सिवा अर्जुनके अन्य सब अनभिज्ञ थे। हाँ, वीर अभिमन्यु कुछ जानता था, अभिमन्युकी अवस्था उस समय १६ वर्षकी थी, अर्जुनको कौरव लड़ते-लड़ते जान-बूझकर मोर्चेसे दूर ले गये थे। उनकी अनुपस्थितिमें अभिमन्यु व्यूह भेदकर भीतर घुस गया; किंतु अकेला वीर बालक कई योद्धाओंके बीचमें फँस जानेके कारण वीरगतिको प्राप्त हुआ। इस समाचारको सुनकर पाण्डव बड़े दुखी हुए और उसी समय अर्जुनने जयद्रथ और श्रीकृष्णने द्रोणाचार्यको समाप्त करनेकी प्रतिज्ञा की। उधर अर्जुनने जयद्रथका वध कर दिया। इधर श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा कि आचार्यका अधिक समयतक रहना हमारे लिये खतरनाक है, यदि आप सहायता करें तो काम बन सकता है। युधिष्ठिरने कहा 'वह क्या' तो श्रीकृष्णने कहा कि आचार्यके पूछनेपर आप केवल इतना कह दें कि '**अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा।**' पहले तो युधिष्ठिरने धर्मका राग अलापा, परंतु जब श्रीकृष्णने कहा कि 'आप धर्म- धर्म क्या कहते हैं, धर्म वह है, जो मैं कहता हूँ।' यह सुनकर युधिष्ठिर चुप हो गये और प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इधर भीमने अश्वत्थामा

नामक हाथीको मारकर यह अफवाह फैलवा दी कि अश्वत्थामा मारा गया। आचार्यजीने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जब मैं अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार सुन लूँगा, उस समय युद्ध नहीं करूँगा। जब उन्होंने इस समाचारको सुना तो इसकी पुष्टि युधिष्ठिरसे करानी चाही; क्योंकि उस समय यह प्रसिद्ध था कि युधिष्ठिर कभी झूठ नहीं बोलते, अत: पूर्वयोजनानुसार युधिष्ठिरने कहा कि '**अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा।**' आचार्यने '**अश्वत्थामा हतो**' इतना ही सुना, अन्तके शब्द पाण्डवोंद्वारा की गयी शंखध्वनिके बीच विलीन हो गये। इस प्रकार अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार सुनकर आचार्यजीने युद्ध करना बन्द कर दिया। उसी समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यका सिर काट डाला।

द्रोणाचार्यके बाद कौरवोंकी सेनाका प्रधान नायक कर्ण हुआ। कर्ण और अर्जुन दोनों बराबरके योद्धा थे। दोनों योद्धा जब युद्धरत थे, उसी समय दैवी घटना हो गयी कि कर्णके रथका पहिया पृथ्वीमें धँस गया। कर्णने अर्जुनसे कहा कि देखो, मैं अपने रथका पहिया निकाल लूँ, उसके बाद फिर युद्ध होगा। अर्जुन इससे सहमत हो गया; परंतु श्रीकृष्णजी इस बातको जानते थे कि कर्णको हराना अर्जुनके वशका नहीं है। अर्जुनसे कहने लगे कि 'इस समय कर्णका सिर काटनेका अवसर है, अत: अपना काम कर।' अर्जुनने इसे सुनकर कहा—'महाराज! यह तो अधर्म है।' श्रीकृष्णने कहा—'अधर्म कुछ नहीं है। शत्रुको जब मौका मिले मार दे। यदि इस समय तूने देर की, तो फिर कर्णको परास्त करना तेरे लिये असम्भव है।' अर्जुनने अपने सखा श्रीकृष्णकी बात मानकर बात-की-बातमें कर्णका सिर धड़से अलग कर दिया।

कर्ण अपने प्राण गवाँ चुका था। युद्ध होते हुए सत्तरह दिन हो गये थे, अठारहवाँ दिन था, शल्य कौरवोंका सेनापति था। युधिष्ठिरने शल्यको मार डाला। कर्णके दोनों पुत्र भी लड़ाईमें मारे गये। इस समाचारको सुनकर दुर्योधन बड़ा दुखी हो चिन्तामग्न हो गया। उसी समय किसीने आकर शकुनिकी मृत्युकी सूचना दी, जिसे सुनकर तो उसका रहा-सहा साहस भी किनारा कर गया। आशा निराशामें बदल गयी। वह निरुपाय हो युद्धक्षेत्रसे भाग एक जलाशयमें जा छिपा। पाण्डव भी पता लगाते हुए उस जलाशयपर आ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर नाना प्रकारसे दुर्योधनको धिक्कारने लगे कि, 'इस प्रकार कायरोंकी तरह भागकर छिप जाना वीरोंका काम नहीं है, यदि तुम सबके साथ लड़नेमें अपनेको अशक्त समझते हो तो हममेंसे किसी एकसे लड़कर अपना राज्य ले लो।' दुर्योधनने जब यह सुना तो निकल आया। वह बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था। उसने आते ही कहा कि 'मैं राजा हूँ और राजाका युद्ध राजाके साथ ही हो सकता है, अत: पाण्डवोंका जो राजा हो, वह मुझसे लड़े।' जब युधिष्ठिरने यह सुना तो कुछ घबराये; परंतु श्रीकृष्णके धैर्य बँधानेपर शान्त हुए। श्रीकृष्णने कहा कि 'आप दुर्योधनसे कह दीजिये कि हमने भीमको अपना राजा बना दिया है, अत: तुमको भीमसे लड़ना होगा।' युधिष्ठिरने इसी प्रकार दुर्योधनसे कह दिया। दुर्योधनने कहा कि 'आप जो कहते हैं वह ठीक है; परंतु मेरे विश्वासके लिये आप सब मिलकर मेरे सामने अपने राजाको प्रणाम कर लें।' युधिष्ठिर फिर घबराये। तब श्रीकृष्णभगवान्‌ने फिर उन्हें समझाया कि इसमें घबरानेकी कौन-सी बात है। क्षत्रिय अपने शस्त्रोंको प्रणाम करते ही हैं। सब भाई आपको छोड़कर भीमको प्रणाम करें और आप चूँकि बड़े हैं, इसलिये भीमकी गदाको प्रणाम करें, दुर्योधन यही समझेगा कि सबने भीमको प्रणाम कर लिया। अत: युधिष्ठिरने वैसा ही किया। दुर्योधनको विश्वास हो गया और भीमके साथ गदायुद्ध करना स्वीकार कर लिया। दोनोंमें गदायुद्ध प्रारम्भ हो गया, युद्ध करते हुए पर्याप्त समय हो गया; परंतु कोई हार नहीं मान रहा था। भगवान् श्रीकृष्णने भीमको थका अनुभवकर उसके हार जानेकी शंकासे जाँघमें गदा मारनेका इशारा किया। भीमने तदनुसार गदाके प्रहारसे जाँघ तोड़ डाली। जंघाके टूटते ही दुर्योधन धराशायी हो गया। उस समय कुछने इसका विरोध किया; क्योंकि गदा-युद्धमें कमरसे ऊपर प्रहार करनेका नियम है, कमरसे नीचे नहीं, परंतु श्रीकृष्ण महाराजने इसका

समाधान इस प्रकार किया कि 'जब द्रौपदीको सभाके बीचमें पकड़वा मँगाकर दुर्योधनने अपनी जाँघ दिखाकर उसपर बैठनेका इशारा किया था, उस समय भीमने दुर्योधनकी जंघा तोड़नेकी सबके सामने प्रतिज्ञा की थी। अत: उसने उस प्रतिज्ञाको पूरा किया है।'

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी राजनीतिज्ञताने विजयमाल पाण्डवोंको पहनायी। इसी नीतिका अवलम्बनकर हिन्दू-धर्म-रक्षक वीर शिवाजीने मुसलमानी सल्तनतको तहस-नहस कर डाला था। नेताजी श्रीसुभाषचन्द्र बोस बाबूने भी प्राय: इसी नीतिसे काम लिया था। पाठक घटनाओंका मिलान करनेपर स्वयं ही इसको अनुभव करेंगे।

क्रान्ति-गाथा—

कालापानीसे मृत्यु श्रेयस्कर है

सन् १८५७ के गदरके समयकी कथा है। हैदराबादके समीप ही जेरापुर नामकी एक छोटी-सी रियासत थी। वहाँका राजा बहुत छोटी उम्रका था और वह विप्लवकारियोंसे मिला हुआ था। उसने अँगरेजोंके साथ लड़नेके लिये अरब और रोहिला-पठानोंकी एक फौज तैयार की थी।

सन् १८५८ ई० की फरवरीमें राजा हैदराबाद आया था। इसकी सूचना मिलते ही निजामके स्वामिभक्त वजीर सालारजंगने तुरन्त उसको गिरफ्तार करके अँगरेजोंको सौंप दिया।

इस बालक राजाकी गिरफ्तारीका वृत्तान्त अत्यन्त प्रशंसनीय और वीरोचित है। कर्नल मेटोज टेलर नामक एक अँगरेज अधिकारीके साथ राजाका बड़ा प्रेम था। राजा उन्हें 'अप्पा' कहता था। जेलखानेमें मेटोज टेलरने राजासे मिलकर उससे दूसरे विप्लवकारियोंके नाम पूछे। टेलर इस प्रसंगपर लिखते हैं कि राजाने गर्वसे उत्तर दिया—'नहीं अप्पा! मैं उनके नाम कभी नहीं बताऊँगा। कदाचित् मैं अपने प्राणोंके लिये भीख माँगूँगा—ऐसी मुझे आशा हो, यह मत समझियेगा। पर अप्पा! जैसे मैं दूसरेकी दयापर कायरकी तरह जीना नहीं चाहता, वैसे ही मैं अपने देशबन्धुओंके नाम भी प्रकट नहीं कर सकता।' कर्नल मेटोज एक दिन फिर राजाके पास गये। उन्होंने बालक राजासे कहा—'तुम यदि दूसरोंके नाम बता दोगे तो तुम्हें क्षमा कर दिया जायगा।' राजाने उत्तर दिया—'×××× अप्पा साहेब! जब मैं मृत्युके मुखमें जानेकी तैयारी कर रहा हूँ, तब क्या मैं विश्वासघात करके अपने देशवासियोंके नाम आपको बतला दूँ? नहीं, नहीं, तोप या कालापानी—ये सब मेरे लिये इतने भयंकर नहीं हैं, जितना भयंकर विश्वासघात है!'

कर्नल टेलरने राजासे कहा—'तुमको प्राणदण्ड दिया जायगा।' राजाने जवाब दिया—'अप्पा! मेरी एक प्रार्थना है, मुझे फाँसीपर मत चढ़ाइयेगा। मैं चोर नहीं हूँ। मुझे तोपके मुँह उड़ा दीजियेगा; फिर देखियेगा मैं कितनी शान्तिसे तोपके सामने खड़ा रह सकता हूँ।' कर्नल टेलरके कहनेसे बालक राजाको प्राणदण्डके बदले कालेपानीकी सजा दी गयी।

जब उसे कालेपानी भेजा जा रहा था, तब राजाने हँसी-हँसीमें ही अपने अँगरेज पहरेदारकी पिस्तौल ले ली और मौका देखकर अपने ऊपर गोली दाग दी। इसके पहले उसने एक बार कहा था कि 'कालेपानीकी अपेक्षा मैं मृत्युको अधिक पसन्द करता हूँ। कैद और कालेपानीको तो मेरी प्रजाका एक तुच्छ-से-तुच्छ पहाड़ी भी पसन्द नहीं करेगा, तब मैं तो राजा हूँ।'

इस वीर बालक राजाका यह वृत्तान्त कर्नल मेटोज टेलरद्वारा लिखित 'स्टोरी आफ माइ लाइफ' (मेरी जीवन-कहानी) नामक पुस्तकसे लिया गया है। भारतके इस बलिदानी बालक राजाके प्रति हमारा कोटि-कोटि नमस्कार!

सात्त्विक वृत्ति

(श्रीसुरेशचन्द्रजी)

'रामायणको मैं जीवनकी पुस्तक मानता हूँ और मेरा ऐसा विश्वास है कि जबतक हम उसको इस भाँति समझनेका प्रयत्न नहीं करेंगे, 'राम-राज्य'की स्थापना हमारे शरीर, मन तथा बुद्धिमें नहीं हो सकती। हजारों वर्षोंसे रामायणका पाठ घर-घरमें हो रहा है, परंतु रामायणकी जो गारंटी—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

—है, यह रामायणका पाठ करनेवालोंके जीवनमें चरितार्थ होती नहीं पायी जाती। उनके शरीर रोगसे ग्रसित हैं, मन विकारयुक्त हैं तथा बुद्धि अज्ञानसे परिपूर्ण है। इसका क्या कारण है? क्या रामायण गलत है? नहीं, ऐसा नहीं है; क्योंकि इसके आधारपर साधनाद्वारा बहुत-से व्यक्ति अपना जीवन सफल बना चुके हैं। तो फिर हमारी असफलताका क्या कारण है? मेरे विचारसे हमलोग रामायणको एक धर्मकी पुस्तक-मात्र मानते हैं और उसका हमारे दैनिक जीवनसे भी कोई सम्बन्ध है—यह विचार करनेके लिये तैयार नहीं हैं।

पार्वतीने तप किया, मनु-शतरूपाने तप किया, भरत तथा अयोध्यावासियोंने साधना की। क्या ये सब मात्र ऐतिहासिक घटनाएँ हैं अथवा एक पौराणिक ग्रन्थकी उन गाथाओंमेंसे हैं, जिनका क्रियात्मक जीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं है? क्या हम भी उसी परिपाटीपर चलकर वही प्राप्त नहीं कर सकते, जो उन्होंने किया?

देश, काल तथा पात्रके अनुसार इस साधनाके रूपमें परिवर्तन हो सकता है; परंतु मूल सिद्धान्त वे ही रहेंगे। यदि ऐसे कुछ साधक तैयार हों, जो रामायण इस भाँति समझने और उसका क्रियात्मक उपयोग करनेको प्रस्तुत हों या कर रहे हों, तो बड़ा लाभ हो सकता है। मेरा यह निवेदन है कि लोग सत्संगकी समाप्तिके बाद रुक जायँ और हमलोग आपसमें बैठकर अपने अनुभव तथा कठिनाइयोंको बतायें तथा नवीन सुझाव स्वत:प्राप्त विवेकके प्रकाशमें रखें, जिनसे लाभ उठाकर हम एक-दूसरेकी सहायता कर सकें और अपनी साधनामें अग्रसर हो सकें।' इतना कहकर योगीजी शान्त मुद्रासे बैठ गये।

कुछ लोग उठकर चले गये, लगभग पचीस व्यक्ति बैठे रहे। योगीजीने कहा—'मेरा ऐसा अनुमान था कि पाँच-छ: व्यक्ति ही रुकेंगे, परंतु बात मेरी आशाके विपरीत हुई।'

दो-तीन सज्जन एक साथ बोल उठे कि 'साहब! हमलोग तो आपके मुखसे और अधिक सुननेके लिये ही बैठे हैं। कुछ करने-धरनेवालोंमें नहीं हैं।'

योगीजी हँसने लगे—उपस्थित लोगोंकी मनोवृत्तिपर! वहाँपर पुलिसके एक बहुत ऊँचे अफसर भी बैठे हुए थे, जो योगीजीके अनुयायी थे तथा उनके सिद्धान्तोंपर चलकर पर्याप्त लाभ उठा चुके थे। उनके मुखपर पुलिसके अधिकारियोंकी-सी निरंकुशता न थी, अपितु धार्मिक पुरुषोंका-सा माधुर्य तथा कोमलता थी। वे प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर भगवान्‌का स्मरण करते थे। भोजनमें अन्नका परित्याग लगभग एक वर्षसे किये हुए थे और दिनमें केवल एक बार कन्द-मूल-फल तथा शाकका आहार करते थे। योगीजीके सत्संगमें आनेवाले सभी व्यक्ति उन्हें श्रद्धा तथा आदरकी दृष्टिसे देखते थे। उन्होंने कहा—'वैसे तो मेरा कोई विशेष अनुभव नहीं है, किंतु आज प्रात:कालकी एक घटना उल्लेखनीय है—

मेरे घरके बाहरी कमरेमें एक लड़का रहता है, जो विश्वविद्यालयमें एल-एल०बी० में पढ़ता है। धनाभावके कारण वह अपनी शिक्षा आगे बढ़ानेमें असमर्थ था, वह मेरे पास आया और उसने अपनी कठिनाइयाँ मेरे सामने रखीं। मैं उसको अपने साथ रखनेपर राजी हो गया और उसको रहनेके लिये अपना घरका बाहरी कमरा दे दिया। घरपर ही उसके भोजनकी भी व्यवस्था कर दी।

आज प्रात: लगभग पाँच बजे जब वह दाढ़ी बना रहा था, तब उसने पानीका लोटा खिड़कीमें रख

दिया। एक आदमी उस लोटेको उठानेकी नीयतसे खिड़कीके पास आया, पर अन्दर एक व्यक्तिको देखकर लौट गया। उस कमरेके बाहर दरवाजेके पास एक टूटा हुआ उगालदान पड़ा था। वह उसको उठाकर नौ-दो ग्यारह हुआ। उस लड़केने देखा कि कोई व्यक्ति खिड़कीके पास आया और उसको देखकर दरवाजेकी ओर गया और वहाँसे कुछ उठाकर चला गया। वह कमरेके बाहर निकल आया, ठीक उसी समय मैं भी घरसे बाहर निकला। मुझे देखते ही उसने प्रणाम किया और उस घटनासे सूचित किया। मैंने तुरंत अपने अर्दलीको उस आदमीको पकड़ लानेका आदेश दिया।

लगभग आधे घंटेमें वह व्यक्ति पकड़कर मेरे पास लाया गया। उस अर्दलीने पकड़ते समय ही उसकी काफी मरम्मत कर दी थी। तो भी कोठीपर आते ही और लोगोंने उसकी पूजा शुरू कर दी। मेरे अन्दर भी कुछ तामस वृत्तिका प्रादुर्भाव हुआ और मैंने चौकीसे दो कान्स्टेबलोंको बुलाकर उनकी सुपुर्दगीमें उस व्यक्तिको दे दिया।

किसी क्रूर तथा अनिष्टकारक कर्म करनेके बाद हमें ग्लानि होती है और शीघ्र ही कोमल भावनाओंका जन्म होता है और तब उस व्यक्तिसे, जिसके साथ हमने अन्याय किया है, सहृदयताका बर्ताव करनेकी इच्छा होती है।

जब कान्स्टेबल उसे ले जाने लगे, तब मैंने बहुत नरमीसे कहा—

'तुम कौन हो और तुमने चोरी क्यों की?'

'मैं उड़ीसाका एक गरीब ब्राह्मण हूँ। बाढ़से घर-बार तथा खेती नष्ट हो जानेपर मैं भागकर गोरखपुर आया और वहाँ रेलवेमें मजदूरी करने लगा। दुर्भाग्यसे छटनीमें वहाँसे भी निकाल दिया गया और अब कई दिनोंसे यहाँपर हूँ।' उसकी तलाशी लेनेपर कुछ ऐसे प्रमाण मिले, जिससे उसकी बातोंकी पुष्टि हुई। उसको देखनेसे मालूम होता था कि कई दिनोंका भूखा है।

मुझे उसपर बहुत दया आयी और मैंने कान्स्टेबलको उसे छोड़कर चौकी लौट जानेका आदेश दिया और उस व्यक्तिको भोजनकी सामग्री देकर विदा किया।

'मेरे जीवनमें यह पहला अवसर था कि एक व्यक्ति चोरी करते हुए पकड़े जानेपर भी मैंने छोड़ दिया और तब भी मुझे कोई मलाल नहीं हुआ, अपितु एक दैवी आनन्दकी अनुभूति हुई। मैंने ऐसा अनुभव किया कि यह इस सात्त्विक वृत्तिका प्रभाव था, जिसका प्रादुर्भाव मेरे जीवनमें संयम एवं नियमके द्वारा हुआ है, जो मेरी साधनाके विशेष अंग हैं।'

शिव-स्तुति

(श्रीब्रह्मबोधिजी)

'रुद्रों में मैं ही हूँ शंकर', गीता में श्रीहरि जब बोले।
ब्रह्मस्वरूप सदाशिव हो तुम, भेद स्वयं ईश्वर ने खोले॥
सहज-सरल लघु शिलाखंड शिवलिंग तुम्हारा घर बन जाता।
स्वर्ण नहीं पत्तों, जल-फल से ही निर्धन तुमको हर्षाता॥
दीनों, दलितों, दुखियोंके ईश्वर हो तुम, करुणा के धाम।
हे गौरीपति, भोलेशंकर, कोटि-कोटि है तुम्हें प्रणाम॥
तुम सात्त्विक-तामसिक सभी के, तुम निर्धन के, तुम धनियों के।
भूत-पिशाचों के आश्रय तुम, आश्रय तुम ऋषियों-मुनियों के॥
तुम सब के औ सभी तुम्हारे, तुम निर्बल के, बलशाली के।
तुम्हीं हृदय हिमगिरि-तनया के, तुम्हीं निलय दुर्गा-काली के॥
तुम जपते हरिनाम अहर्निश तुमको पूजें राघव राम।
हे कार्तिकप्रिय, गणपति-वत्सल, कोटि-कोटि है तुम्हें प्रणाम॥
सकल सृष्टि कल्याण-हेतु बन, अमृत त्याग हलाहल पीते।
रह अनिकेत दिगंबर शंकर, चंदन तज शव-भस्म लगाते॥
ऋद्धि-सिद्धि-ऐश्वर्य-प्रदाता, भवन त्याग हिमशिखर विराजें।
ध्यान-समाधि कठिन धारण कर, योगीश्वर सब कुछ परित्यागें॥
चन्द्रमौलि वासुकी-विभूषित, नंदीपूजित, हे सुखधाम।
हे मृत्युंजय, हे गंगाधर, कोटि-कोटि है तुम्हें प्रणाम॥
हे हरिरूप, सुमंगलकारी! ब्रह्मबोधि का तुम्हें प्रणाम।
हे मृत्युंजय, हे गंगाधर, कोटि-कोटि है तुम्हें प्रणाम॥

नागपंचमी-व्रत-माहात्म्य

एक बार महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे नागपंचमी-व्रतके विषयमें जिज्ञासा व्यक्त की, तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'युधिष्ठिर! दयिता-पंचमी नागोंके आनन्दको बढ़ानेवाली होती है। श्रावणशुक्ला पंचमीमें नागोंका महान् उत्सव होता है। उस दिन वासुकि, तक्षक, कालिक, मणिभद्रक, धृतराष्ट्र, रैवत, कर्कोटक और धनंजय—ये सभी नाग प्राणियोंको अभयदान देते हैं। जो मनुष्य नागपंचमीके दिन नागोंको दूधसे स्नान कराते हैं, दूध पिलाते हैं, उनके कुलमें प्राणियोंको ये सदा अभयदान देते रहते हैं। जब नागमाता कद्रूने नागोंको शाप दे दिया, तब वे रात-दिन संतप्त हो रहे थे। जब उन्हें गायके दूधसे तृप्त किया गया, तबसे वे प्रसन्न होकर प्रिय हो गये।'

युधिष्ठिरने पूछा—'जनार्दन! माता कद्रूने नागोंको क्यों शाप दिया? उस शापका निराकरण कैसे हुआ?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अश्वोंका राजा उच्चैःश्रवा अमृतसे उत्पन्न हुआ था, वह श्वेत वर्णका था। उसे देखकर नागमाता कद्रूने अपनी बहन विनतासे कहा—'देखो, देखो! अमृतसे उत्पन्न यह अश्वरत्न श्वेत है, पर आज इसके सभी श्वेत बाल काले दिखायी पड़ते हैं। तुम देखती हो या नहीं?' विनता बोली—'इस श्रेष्ठ घोड़ेका सर्वांग श्वेत है, न काला है न लाल। कैसे तुम्हें काला दिखायी पड़ता है?'

कद्रू बोली—'विनता! मैं एक आँखवाली इसे काले बालोंवाला देखती हूँ, परंतु तू दो आँखोंवाली होकर भी नहीं देखती? कुछ शर्त रखो।' विनताने कहा—'कद्रू! यदि तुम इसके काले केश दिखा दोगी तो मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी। यदि तुम काले केश नहीं दिखा पाओगी तो तुम मेरी दासी होगी।' इस प्रकार शर्त (प्रण)-कर वे दोनों क्रुद्ध होकर चली गयीं। रात्रिमें सबके सो जानेपर कद्रूने कुटिलता सोची। उसने अपने पुत्रों—काले नागोंको बुलाकर कहा कि 'तुमलोग उच्चैःश्रवाके बाल बनकर उससे चिपक जाओ, जिससे मैं बाजी जीत जाऊँ—विनताको दासी बना लूँ।' तब उन नागोंने माताकी कुटिलतापर उसे फटकारा कि यह महान् पाप है। हम तुम्हारा कहा नहीं करेंगे। तब कद्रूने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया—'जाओ, तुम्हें अग्नि जला देगी। बहुत दिनोंके बाद पाण्डववंशी राजा जनमेजय विकराल सर्पयज्ञ करेंगे। उस यज्ञमें प्रचण्ड पावक तुम्हें जला देगी।' ऐसा शाप देकर कद्रू चुप हो गयी।

माताके द्वारा शप्त सर्पोंको कुछ सूझा ही नहीं। वासुकि नाग दुःखसे संतप्त हो मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा। उसे दुखी देख ब्रह्माजी सहसा वहाँ आ पहुँचे और सान्त्वना देते हुए बोले—'वासुकि! शोक मत करो। मेरी बात सुनो। यायावर वंशमें जरत्कारु नामक द्विज उत्पन्न हुए हैं। आगे चलकर वे बड़े तेजस्वी तपोनिधि होंगे। उन्हें तुम अपनी बहन विवाह दो। उससे आस्तीक नामक विख्यात पुत्र होगा। वह नागोंके विनाशकारी उस नागयज्ञको राजाको समझा-बुझाकर रोक देगा।'

ब्रह्माजीकी बात सुनकर प्रसन्न वासुकिने वैसा ही किया। नागोंको इससे अभयदान मिला।* वे इससे परम प्रसन्न हुए कि उनका वंशधर आस्तीक हम नागोंका विनाश रोक देगा। ब्रह्माजीने उनसे कहा—'आस्तीकद्वारा तुमलोगोंका यह भय-निवारण (श्रावण-शुक्ला) पंचमीको होगा।' इसलिये युधिष्ठिर! यह पंचमी शुभादयिता कही जाती है तथा नागोंको आनन्द देनेवाली है। इस तिथिको ब्राह्मणोंको भोजन कराकर नागोंकी इस प्रकार पूजा-प्रार्थना करनी चाहिये—'भूतलपर जो नाग हैं, वे प्रसन्न हों। जो नाग हिमालयपर रहते हैं, जो आकाशमें हैं, जो देवलोकमें हैं, जो नदियों-सरोवरोंमें हैं और जो बावली-तालाबोंमें हैं, उन सबको नमस्कार है।' ऐसा कहकर नागों और

* परम्परा है कि नीचे लिखा श्लोक नित्य घरमें आस्तीक ऋषिका स्मरण करते हुए बोलनेसे सर्पोंका भय नहीं रहता—

सर्पापसर्प भद्रं ते दूरं गच्छ महाविष। जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीक वचनं स्मर॥

विप्रोंकी यथायोग्य पूजाकर उनका विसर्जन करे। तत्पश्चात् सेवकों और परिजनोंसहित स्वयं भोजन करे। पहले मधुर पदार्थ खाये, पीछे अन्य भोज्य पदार्थ स्वेच्छया ग्रहण करे। इस प्रकार व्रत-नियम करनेवाला मरनेके बाद नागलोकको जाता है, वहाँ अप्सराएँ उसकी पूजा करती हैं और वह श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो अभीष्ट कालतक विहार करता है। वहाँसे पुनः इस भूतलपर जन्म लेनेपर वह राजाधिराज होता है। उसके पास सभी रत्नोंका भण्डार होता है, सवारियाँ होती हैं, सम्पत्ति होती है। वह पाँच जन्मोंतक निरन्तर राजा होता है। उस अवधिमें वह आधि-व्याधिसे मुक्त रहता है। पत्नी और पुत्र, उसके सहायक—अनुकूल होते हैं। इसलिये नागोंकी घी-दूध आदिसे सदा पूजा करनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—'भगवन्! क्रुद्ध नाग जिस व्यक्तिको डस लेते हैं, उनका क्या होता है?' भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! नागके डसनेसे मृत्युको प्राप्त व्यक्ति अधोलोकमें गिरता है। वहाँ वह विषहीन सर्प होता है।' युधिष्ठिरने पुनः पूछा—'साँपके काटनेसे जिसके पिता-माता, भाई-मित्र, पुत्र, बहन, कन्या या स्त्री—कोई भी सम्बन्धीजन मर जाते हैं, उनके उद्धारके लिये उसे क्या दान-व्रत-उपवास करना चाहिये, जिससे वे स्वर्गको प्राप्त हों।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! उन्हें नागोंको प्रसन्न करनेवाली पंचमीका व्रत एक वर्षतक करना चाहिये। उसका विधान सुनिये—भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी पंचमी अधिक पुण्यकारक है। सद्गतिकी कामनासे उसे ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षमें बारह पंचमियाँ होती हैं। व्रतके पूर्व दिन चतुर्थीको रात्रिमें एक अन्न ग्रहण करना चाहिये। दूसरे दिन पंचमीको नागकी पूजा करनी चाहिये। सोने या चाँदी या लकड़ी अथवा मिट्टीका पाँच फनोंका नाग बनवाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करे। उन्हें करवीरके फूल, कमलके फूल, सुन्दर जाती-पुष्प, चन्दन, नैवेद्य आदि समर्पितकर पूजा करे। पूजाके पश्चात् ब्राह्मणको भोजन कराये। ब्राह्मण-भोजनमें घी-खीर-मोदककी प्रधानता होनी चाहिये। सर्पके काटनेसे मरे हुए प्राणीके लिये नारायणबलि करे। दान और पिण्डदानमें ब्राह्मणोंको तृप्त करना चाहिये। एक वर्ष पूर्ण होनेपर वृषोत्सर्ग करना चाहिये। स्नानकर जलदान करे—'श्रीकृष्ण प्रसन्न हों—यह प्रार्थना करे। प्रत्येक मासमें अनन्त, वासुकि, शेष, पद्म, कम्बल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक तथा पिंगल नामक महानागोंका नामोच्चारण करना चाहिये। वर्षकी समाप्तिपर पारणके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इतिहासवेत्ता (विद्वान्) विप्रको स्वर्णका नाग तथा सवत्सा सीधी गौ, कांसेकी दोहनी (दुग्ध दुहनेका पात्र)-सहित देनी चाहिये।

विद्वानोंने यह पारणविधि बतायी है। इस श्रेष्ठ व्रतके करनेसे बान्धवोंको सद्गतिकी प्राप्ति होती है। सर्पादिके काटनेसे जिनकी अधोगति हो जाती है, उनके निमित्त यदि एक वर्षतक यह उत्तम व्रत भक्तिपूर्वक किया जाय तो वे जीव उस यातनासे मुक्त होकर शुभगतिको प्राप्त होते हैं। जो भक्तिपूर्वक नित्य इस आख्यानको पढ़ता या सुनता है, उसके कुटुम्बमें नागोंसे कोई भय नहीं होता। इसी प्रकार जो भाद्रपदशुक्ला पंचमीको काले रंगोंसे नागोंका चित्र बनाकर गन्ध-पुष्प-घी-गुग्गुल-खीर आदिसे भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसपर तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं। उसके सात कुल (पीढ़ी)-तक नागोंसे भय नहीं रहता। इसी प्रकार आश्विनमासकी शुक्ला पंचमीको कुशका नाग बनाकर इन्द्राणीके साथ उनकी पूजा करे। घी-दूध और जलसे स्नान कराकर दूधमें पके गेहूँ तथा अन्य भोज्य पदार्थ उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक समर्पित करे तो शेष आदि नाग उसपर प्रसन्न होते हैं, उसे सुख-शान्ति प्राप्त होती है। मृत्युके बाद वह प्राणी उत्तम लोकको प्राप्त करता है, जहाँ चिरकालतक आनन्द भोगता है। यह पंचमीव्रतका विधान है। सर्पोंका सर्वदोष-निवारक मन्त्र यह है—'**ॐ कुरुकुल्ले हुं फट् स्वाहा।**' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक सौ पंचमियोंको जो सर्पोंकी पूजा पुष्पोंसे करते हैं, उनके घरमें साँपोंका भी भय नहीं होता। [**भविष्यपुराण**]

जीवनमें सद्‌गुणोंकी वृद्धि कैसे हो ?

प्रसिद्ध उद्योगपति लक्ष्मीपति सिंहानियाके बारेमें अपने संस्मरणमें स्वामी अखण्डानन्दजीने लिखा है कि एक बार भाई लक्ष्मीपतिसे कोई सत्संगका प्रसंग चल रहा था, जिसमें उन्होंने पूछा कि मनुष्यके जीवनमें सद्‌गुणोंकी वृद्धि कैसे होती है ? इसपर मैंने उनको श्रीमद्भागवतका यह श्लोक सुनाया—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः॥

(११।१३।४)

इस श्लोकका अर्थ और व्याख्या उन्हें बहुत पसन्द आयी, जो इस प्रकार है—

मनुष्यके जीवनमें सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुणका प्रकाश-विकास अथवा वृद्धि-समृद्धिके लिये दस बातोंका ध्यान रखना आवश्यक है। यदि वे सात्त्विक होंगी तो जीवनमें सद्‌गुणोंका विकास होगा। वे दस बातें इस प्रकार हैं—

१-आप अध्ययन क्या करते हैं ?

हृदय पवित्र करनेवाले उपनिषद्, गीता, भागवत, रामायण आदि ग्रन्थ। भोग-विलास, धनोपार्जन-सम्बन्धी पुस्तकें अथवा भूत-प्रेत, चोर, डाकू आदिके काल्पनिक ग्रन्थ या बेईमानी, चालाकी, तिलस्माती या वासना बढ़ानेवाली कहानियाँ ? आपके जीवनको अपनी-अपनी दिशामें आकृष्ट करनेवाली यही किताबें हैं।

२-आप कैसे जलका सेवन करते हैं, स्नानमें, पानमें, भोजनमें ?

भगवान्‌का चरणामृत, पवित्र नदी एवं स्रोतोंका जल, फलोंका रस, शाकोंके द्वारा निर्मित पेय अथवा सुरा आदि ? आप जलके प्रभावसे मुक्त नहीं रह सकते।

३-आप कैसे लोगोंमें रहना, मिलना-जुलना पसन्द करते हैं ?

आप जैसे लोगोंमें रहेंगे, बड़ा मानकर सेवा करेंगे और जैसा होना चाहेंगे, वैसे हो जायँगे।

४-आपको मनसे कैसे स्थान प्रिय हैं ?

नदी-तट, पर्वत, हरी-भरी वनराजि, तीर्थ, मन्दिर, सन्तोंका निवास अथवा जहाँ सत्संग हो रहा हो, वैसी भूमि। आप स्वयं अपनी रुचिको परखिये, निरखिये। आप वैसे ही होने जा रहे हैं।

५-आप अपना समय कैसे व्यतीत करते हैं, निद्रा, आलस्य, प्रमादके कारण निकम्मे तो नहीं हो रहे हैं ?

आप अर्थलिप्सा एवं भोग-वासनासे आक्रान्त होकर कर्म करते हैं ? निश्चय ही आपके जीवनमें विक्षेपकी वृद्धि होगी। आप अपने जीवनके अमूल्य क्षणोंका कौन-सा अंश सत्यके चिन्तनमें, एकाग्रतामें, भगवद्भक्तिमें एवं लोकहितमें लगाते हैं ? आपका एक क्षण आपके जीवनको स्वर्ग एवं नर्क बनानेमें समर्थ है।

६-आपको क्या करना पसन्द है ?

चोरी, हिंसा, पक्षपात ? मोहसे प्रेरित कर्मोंसे बचनेका प्रयास करते हैं ? स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरोंका हित करनेका प्रयत्न करते हैं या नहीं। कर्म बाहरसे देखनेमें कितना भी छोटा हो, उसका प्रभाव बहुत व्यापक होता है। भले दूसरोंको उसका पता न लगे, परंतु आपका अन्तःकरण उसके प्रभावसे मुक्त नहीं रह सकता। प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया होती है और वह अपने अंग-अंग और अन्तरंगपर भी होती है। सबसे अच्छा यह होगा कि आप कोई कर्म करनेके पहले इस ओर गम्भीरतासे ध्यान दे लें कि इससे मेरी आदतें सुधरेंगी या बिगड़ेंगी। जिससे किसीका अहित होता हो और अपनी आदत बिगड़ती हो, ऐसा कर्म कभी नहीं करना चाहिये।

७-किस वंशमें आपका जन्म हुआ, यह तो एक गौण बात है।

अतः शरीरका जन्मदाता शिक्षक अथवा गुरु होता है। उत्तम वंश-परम्परा, दोषापनयन एवं गुणाधानरूप संस्कार और सदाचारका पालन—ये तीनों ही हमारे जीवनको सँवारते हैं। जीवनमें सदाचारकी स्थिति ही सच्चा जीवन है। आप अपनी बुद्धि-तुलापर तौलकर देख लीजिये कि यह आपका जन्म अपने आचरणसे कुलीन

हो रहा है न।

८-आपके चिन्तनकी दिशा क्या है?

जागते समय, बैठे हुए एकान्तमें, सोनेके पूर्व आप मन-ही-मन क्या सोचते रहते हैं? आत्मचिन्तन, लोक-कल्याण या शरीर, भोग, रोग, राग, योग। सावधान! यदि चिन्तनकी दिशा अनुचित एवं अशुद्ध दिशामें चली गयी तो आप कहींके नहीं रहेंगे, न घरके न घाटके। मनुष्यका वास्तविक चिन्तन ही उसका सच्चा जीवन है।

यह निश्चित रूपसे समझिये कि कोई दूसरेके मनका ज्ञाता नहीं हो सकता। न आपके मनकी बात दूसरे समझ पाते हैं और न तो दूसरोंके मनकी आप। अत: ठोस जगत्‌में आप अपनी वाणी एवं शरीरके व्यवहारको अपने पवित्र चिन्तनका अनुयायी बनाइये। दूसरोंकी बुराई सोचना अपनेको बुरा बनाना है। ध्यान बुरा है तो आप बुरे हैं। ध्यान अच्छा है तो आप अच्छे हैं।

९-आप मन्त्रणा किस लक्ष्यसे करते हैं?

आपके संकल्प एवं योजनाका उद्देश्य क्या है? आपके मनमें बार-बार क्या आता है? आप किस मन्त्रका जप करते हैं? हृदय पवित्र करनेवाले मन्त्र संयम एवं परमात्म-चिन्तनसे भरपूर होते हैं। भूत-भैरवके मन्त्र या दूसरोंका अहित करनेवाली मन्त्रणा हमारे जीवनको बुराईके गड्ढेमें डाल देती है।

१०-प्रकृतिका गुण-दोषमय प्रवाह अनादि-अनन्त है।

चित्त-वृत्तियोंकी नदी अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता दोनोंकी ओर जाती है। उसमें कभी विष बहता है, कभी अमृत। कभी शान्ति, करुणा तो कभी ईर्ष्या-द्वेष। इसीमें सावधान रहनेकी बारी है। आप अपनेको उत्तम विचारोंकी धारामें डाल दीजिये। कभी डूबेंगे, कभी उतरायेंगे। कभी-कभी दायें-बायें भी होंगे। परंतु उत्तमताकी धाराको न छोड़िये। वह केवल बाह्य जीवनको ही नहीं सुधारेगी-सँवारेगी, बल्कि अन्तरंग जीवनको भी अमृतमय बना देगी। थोड़े ही दिनोंमें आप स्वयं आश्चर्यचकित रह जायँगे कि आपके जीवनको इतना मधु-मधुर, इतना सरस, इतना सौरभमय, इतना सुकुमार और इतना संगीतमय क्यों बनाया गया? आप अमृतके पुत्र हैं और अमृत होने, रहनेमें ही आपके जीवनकी सफलता है।

[प्रेषक—प्रो० श्रीसन्तोष कुमारजी तिवारी]

जपका रहस्य

(श्रीरामलालजी पहाड़ा)

लोगोंको 'जप' शब्दसे सहसा मालाका स्मरण होता है। उनके मनमें यह जमा हुआ है कि इष्टदेवका नाम या मन्त्रजप केवल माला लेकर उच्चारण करते हुए बैठकर निश्चित संख्या पूरी कर लेना है। इस रीतिसे आजकल इस भारत-भूमिमें करोड़ोंकी संख्यामें जप हो रहे हैं। प्राचीन साहित्य भी इसका समर्थन करता है—अमुक मन्त्र या नाम-जपसे अमुक लाभ होता है। यथा—

'गायत्रीजपकृद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते।'

-आदि वाक्य शास्त्रोंमें कहे गये हैं। यद्यपि इन वाक्योंपर संदेह करना अनुचित है, तथापि इनपर विचार करना सर्वथा वांछनीय है।

जपके सम्बन्धमें सूत्रकार कहता है—**'तज्जपस्तदर्थ-भावनम्'**। जिन इष्टदेवके नामका या मन्त्रका जप किया जाय, उसके आशय, हेतु या प्रयोजनका भी विचार किया जाय। माला लेकर मन्त्रका या नामका निश्चित संख्यामें उच्चारण करना एकांगी जप है।

सम्भव है, इस विधिसे कालान्तरमें चित्त एकाग्र होकर विचारमग्न होने लगे। इस प्रकार निर्मल विचारसे चित्तका शुद्ध होना सहज है। शुद्ध चित्तमें इष्टदेवका ध्यान सुगम हो जाता है। ध्यानद्वारा इष्टदेवकी कृपा पाना सम्भव है। यदि जप करते समय अर्थकी (हेतु, आशय, प्रयोजनकी) भावना नहीं रही, तो बहुत देरसे फल होता है। इस भावनापर चित्तको जमाना ही यथार्थ ढंग है। यह सात्त्विक कार्य है और सत्त्वगुणप्रधान वृत्तिवाले ही कर सकते हैं। अधिकांश मनुष्य रजोगुण और तमोगुणसे

व्याप्त हैं। अत: उनका किया हुआ जप यथार्थ फल नहीं देता।

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥

युगके प्रभावसे मनुष्योंका काम अनधिकार चेष्टाकी कोटिका हो रहा है। इसीसे जप करनेके उपरान्त भी मनको शान्ति नहीं मिलती। आचार्योंने जपकी तीन विधियाँ बतायी हैं। जब बुद्धिसे अक्षरश्रेणी और स्वरयुक्त पदका उच्चारण करके अर्थकी भावना रखी जाती है, तब 'मानसजप' कहलाता है। जब जिह्वा-ओष्ठको किंचित् चलाकर, मनमें इष्टदेवका ध्यान रखकर किंचित् श्रवणयोग्य उच्चारण होता है, तब 'उपांशु जप' कहलाता है और जब वैखरी वाचासे उच्चारण किया जाता है, तब वह 'वाचिक जप' कहलाता है। इस तरह 'वाचिक' से 'उपांशु' और 'उपांशु' से मानसिक जप अधिक श्रेष्ठ बताया जाता है।

यह परम्परागत रूढ़ि है। इसमें अधिकांश जनता फँसी हुई है। कहा गया है—**'गतानुगतिको लोकः।'** संसार ही भेड़िया-धसानका काम करता है। बहिरंगवालोंका अनुकरणप्रिय होना सहज है, इसलिये अधिकांश जनता मनमानी करने लग जाती है। उनको विचार करना कठिन जान पड़ता है।

यहाँ नवीन ढंगसे जपपर विचार किया जाता है। 'जप' शब्दका विश्लेषण करनेसे 'ज' से जन्मजात और 'प' से पालन करना प्रतीत होता है। अत: जपका हेतु अपनी जन्मजात वस्तुका पालन करना है। शरीरनिर्माणमें जठराग्नि, वीर्याग्नि और ज्ञानाग्नि (चेतना)-का आरम्भ हुआ है। वेदमन्त्रमें कहा है—

'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्।'

'मैं यज्ञके (जीवनके) ऋतुके अनुसार काम करनेवाले पूर्व ही रखे हुए (स्थित) अग्निदेवकी स्तुति या पूजा करता हूँ। वह आवश्यक सामग्री (आहुति) डालनेवाला और रत्न (श्रेष्ठ वस्तु) धारण करनेवालोंमें सर्वोत्कृष्ट है। हमारे शरीरोंमें अग्निदेव तीन रूपोंमें पूर्व ही स्थित हैं।'

आयुर्वेदानुसार खान-पानको शुद्ध रखकर जठराग्निका; संयम, नियम या ब्रह्मचर्यसे वीर्याग्निका और ईश्वरार्चन, ध्यान या स्वाध्याय (वेदपाठ आदि)-से ज्ञानाग्निका संरक्षण करना चाहिये। इनका यथोचित संरक्षण करना ही 'जप' का ठीक ढंग होगा। जपमें निरन्तर स्मरण करते रहना आवश्यक है और भावनाके प्रतिकूल कामोंको सर्वथा छोड़ देना। यदि बालकोंको कुछ वस्तु (पुस्तक, कलम, पट्टी, कापी, कुर्ता, चप्पल आदि) लानेका वचन दे दो, तो वे उस वस्तुका निरन्तर स्मरण करते और माता-पिताको तंग किया करते हैं। उनको तो उस वस्तुकी लौ लग जाती है, मानो वे उस वस्तुका जप करते हैं। यद्यपि यह निकृष्ट जप है, तथापि विधि ठीक है। इसी लौसे हमको अपनी पूर्वस्थित तीनों अग्नियोंका संरक्षण करनेमें सचेत रहना चाहिये।

इन अग्नियोंके सिवा शरीर-रचनामें पंच महाभूत (तत्त्व) भी उपस्थित रहते हैं। प्रत्येक तत्त्व अपने गुणका अधिष्ठान है। पृथ्वीमें क्षमा, जलमें नम्रता, शीतलता, अग्निमें शुद्धता, वायुमें अनासक्ति, गतिशीलता, आकाशमें निर्लेपता है। ये सब हमारे शरीरके साथ ही उत्पन्न हुए हैं। नहीं, इनका मिश्रण ही हमारा शरीर है। अत: इन गुणोंका विकास करना आवश्यक है। विषयोंमें फँसकर इन गुणोंको दबा देना ही दु:खों और व्याधिका कारण हो जाता है। इनका संतुलन रखनेसे मनुष्यका मन स्थिर होकर काम करता है। इन्हीं तत्त्वोंसे ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका आविर्भाव हुआ है। इन तत्त्वोंका संतुलन रखनेसे इन्द्रियाँ संयमित रहती हैं। इन्द्रियोंके संयमसे मनमें प्रसन्नता आती है। प्रसन्नतासे सब दु:खोंका नाश हो जाता है; क्योंकि प्रसन्न चित्तसे बुद्धि स्थिर होती है और मनुष्य सुखी होता है। जपमें अर्थकी भावनासे हीन मनुष्यका मन अशान्त रहता है। अशान्त कभी सुखी नहीं हो सकता। तीनों अग्नियोंका संरक्षण करके पंच-तत्त्वोंका संतुलन रखकर जीवन-निर्वाहार्थ काम करते रहना जीवनोपयोगी जप है, जो निरन्तर करनेका है।

लंकाकी अधिष्ठात्रीदेवीद्वारा निशाचर-संहारकी भविष्यवाणी

(श्रीइंदल सिंहजी भदौरिया)

सुन्दरकाण्ड श्रीरामचरितमानसका हृदय माना जाता है। इसमें अतुलित बलधाम, बुद्धि, विवेक और विद्यानिधान श्रीहनुमान्‌जीकी स्तुत्य शक्ति-भक्तिमयी सुकीर्तिका विशद वर्णन है। पवनपुत्रकी शुचिता, रुचिता और श्रीरामप्रियताके पावन प्रसंगोंने ही सुन्दरकाण्डके नामकरणकी सार्थकता सिद्ध की है। सुन्दरकाण्डके अनेक प्रसंग अनूठे, अभिनव, अद्भुत एवं गूढ़ रहस्योंसे परिपूर्ण हैं। इसी शृंखलाको उद्भासित करती है श्रीरामचरितमानसकी यह चौपाई—

बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संहारे॥

निशाचरोंके समूल विनाशकी भविष्य गाथा प्रस्तुत चौपाई अपने-आपमें समाहित किये हुए है। इस रहस्यमय प्रसंगके कथाक्रमके अनुसार हनुमान्‌जी सीताजीकी खोजमें जब अपना अतिलघु रूप धारणकर रात्रिके समय लंकामें प्रवेश करते हैं, तो लंकाकी अधिष्ठात्रीदेवी लंकिनी हनुमान्‌जीसे कहती है कि 'मेरा निरादर करके कहाँ चला जा रहा है? तू मेरा मर्म (भेद) नहीं जानता, यहाँ छिपकर आनेवाले ही मेरा आहार होते हैं।' यथा—

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥

(रा०च०मा० ५। ४। ३)

यह सुनकर हनुमान्‌जी अपना महाकपिका रूप धारणकर एक मुष्टिका (घूँसा)-प्रहार उसपर करते हैं, जिससे वह खून उगलती हुई भूमिपर लुढ़क जाती है।

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥

(रा०च०मा० ५। ४। ४)

हनुमान्‌जीके प्रबल प्रहाररूपी शक्तिपातसे अभिप्रेरित होकर वह (लंकिनी) अपने-आपको सँभालकर विनती करते हुए यह रहस्य उद्घाटित करती है कि जब बिरंचि (ब्रह्माजी)-ने उग्र तपस्याके फलस्वरूप रावणादिको वरदान दिया, तो उसके उपरान्त मेरी प्रार्थनासे द्रवित होकर उन्होंने मेरे लंकामें निवासकी अवधिकी सीमा बाँधते हुए कहा कि जब श्रीराम-दूतके प्रहारसे तुम आहत होगी, तभी समझ लेना कि अब निशाचरकुलका नाश होनेका अवसर आ गया है।

लंकापुरी अपनी रमणीयता, वैभवपूर्णता, रम्यता और भव्यताके कारण सदैव देवताओं, यक्षों और दानवोंके आकर्षणका केन्द्र रही है। मानसकारने इस तथ्यको इस तरह प्रस्तुत किया है—

भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥

(रा०च०मा० १। १७८। ७-८)

प्रतिकल्पमें सामर्थ्यशाली, शौर्यवान् और प्रतापी ही इसमें निवास करते हैं। यथा—

हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ॥

(रा०च०मा० १। १७८ख)

वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, अग्निपुराण आदि सद्ग्रन्थोंमें लंकिनीको लंकानगरीके रूपमें व्याख्यायित किया गया है। यथा—

....अहं हि नगरी लंका स्वयमेव प्लवंगम।

(वाल्मी० ५। ३। ३०)

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लंकिनीका पर्याय लंका माना है। यथा—

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥

(रा०च०मा० ५। ४। ५)

लंका(लंकिनी) स्वभावसे सद्वृत्ति मनोदशाकी है। लेकिन पुरी-अधिष्ठात्री होनेके नाते नगरके अभिरक्षणको अपना कर्तव्य एवं परमधर्म मानती है। इसीलिये वह हनुमान्‌जीका सांकेतिक प्रकारसे परीक्षण करती है कि क्या ये मेरे कूट मर्मको पहचानते हैं?

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा.....

तू मेरी शठताका मर्म नहीं जानता। (मेरा स्वभाव शठ हो गया है) (मानसपीयूष ख०६, पृ०५२) टिप्पणीके अनुसार लंकानगरीकी अधिष्ठात्री देवी लंका (लंकिनी) दैवीय प्रकृतिकी होनेके कारण देवताओंकी कृपाभूता थी। इसी आधारपर उसने रावणको वरदान देने आये ब्रह्माजीको

अपनी आपत्ति दर्शाते हुए इनके संरक्षण-दायित्वसे जल्दी छुटकारा पानेके लिये राक्षसोंके अन्तका समय ज्ञात किया था।

मानस-पीयूष एवं अग्निपुराणके अनुसार ब्रह्माजीने रावणको लंकापुरीमें पाँच करोड़ वर्ष राज्य करनेका वरदान दिया था। उसी समय लंकाने ब्रह्माजीसे यह प्रार्थना की थी, कि इन दुष्टोंके यहाँ निवाससे मुझे बड़ा आत्मिक दुःख होगा। कृपाकर बतानेका कष्ट करें कि किसी धर्मात्मा राजाका राज्य यहाँ कब होगा? लंकिनी (लंका)-की इस विनतीपर ब्रह्माजीने यह चिह्न बताया था कि जब रामदूत कपिके प्रहारसे तुम विकल होगी, तभी समझना कि निसाचरोंके विनाशका समय आ गया। अतः ब्रह्मवाक्य कभी मिथ्या नहीं हो सकता, यथा—**'स्वयंभूविहितः सत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः।'** (५।३।४८) इस प्रकार जब उसे यह अटल विश्वास हो गया कि श्रीरामदूत हनुमान्‌जीने मुझपर प्रहारकर व्याकुल कर दिया, अब तो राक्षसोंके समूल विनाशका समय आ गया। तभी वह अपनेको बड़भागिनी, पुण्यभागी मानकर हनुमान्‌जीसे कहती है—

तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

(रा०च०मा० ५।४।८)

लंकाके सद्‌प्रयासोंके परिणामस्वरूप ही निशाचरोंके समूल विनाशकी चिह्नित भविष्यवाणी ब्रह्माजीने की थी, जिसकी लंकाने चिरप्रतीक्षा की थी। वह निरन्तर इस खोजबीनमें रहती थी कि कब वह शुभ संकेत प्राप्त होगा, जब यहाँसे इन आततायियोंका नाश होगा।

इस प्रकार जब उसे आज हनुमान्‌जीके प्रहारसे यह आभास हो गया कि ब्रह्माजीकी उक्ति अब साकार होने जा रही है, तब वह स्वयं उस दिशामें सहयोगी बनकर श्रीहनुमान्‌जीका स्वागतकर शुभ मार्ग प्रशस्त करती है—

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥

(रा०च०मा० ५।५।१)

झेन साधनाकी रहस्यमयी कुंजी

(श्रीरामशास्त्रीजी)

पूरबके देश जापानकी साधनाकी झेन-पद्धति सम्पूर्ण विश्वके लिये एक रहस्य बनी है। झेनके चुम्बकीय आकर्षणके वशीभूत होकर विश्वभरके आध्यात्मिक जिज्ञासु खिंचे चले आते हैं। गौतम बुद्धका कमलसूत्र जापानी भाषाके नये कलेवरमें नवसाधकोंका प्रिय मन्त्र बना है।

झेनका सीधा सम्बन्ध जम्बूद्वीप भरतखण्ड भारतवर्ष ब्रह्मावर्तके वैदिक वाङ्मयसे है। यहाँके वैदिक मनीषासे सम्पन्न मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने 'ध्यान और साधना' की ख्याति सातों द्वीपोंतक पहुँचायी। यही रहस्यमय ध्यान-साधना तिब्बतकी भोटियाँ भाषासे नाम बदलकर जापान पहुँची। जापानी भाषामें ध्यान अपभ्रंश होकर 'झेन' कहलाया। पूरबके द्वार जापानमें सूर्यपूजा और ध्यानका अनुष्ठान देश-काल-परिस्थितिके कारण नवस्वरूपमें सामने आया।

ध्यान यानी झेनमें निष्णात साधकोंने बहुत ही अनोखे तरीके-से साधनाके नवपथ चुने। झेन फकीरोंकी विचित्र साधना-शैली कौतूहल और आकर्षण दोनोंका केन्द्र रही। तलवारबाजीके माध्यमसे ध्यान-साधनाकी रोचक कथाएँ मिलती हैं। देश और दुनियामें सर्वश्रेष्ठ तलवारबाजीसे सर्वोच्च साधनाके लिये एक झेन फकीर प्रसिद्ध था। झेन साधक फकीर गहरे वनके बीच गायोंके साथ रहता था। सुदूर हिमालयसे उसका नाम सुनकर एक तरुण मंजिल-दर-मंजिल कूच करता और ढूँढ़ता उस वनके समीप एक गाँवमें पहुँचा। गाँवके मुखियाको आश्चर्य हुआ कि तरुण झेन (झेन पागल)-की खोजमें आया है। मुखियाने समझाया कि खापा (पागल)-से मिलकर कुछ नहीं मिलेगा, वापस लौट जाओ। इससे तरुणके मनमें फकीरसे मिलनेकी कामना और प्रबल हुई।

घने वनके बीच गायोंके बाड़ेमें झेन फकीर अपनी अजेय तलवारको धार लगा रहा था। तरुणने दौड़कर फकीरके पैर पकड़ लिये। झेन फकीरने तरुणको देखा और अनदेखा कर दिया, परंतु तरुण इसी प्रतीक्षामें पैर पकड़े बैठा रहा कि कभी-न-कभी तो गुरु उससे पूछेंगे कि क्यों आये

हो ? उधर फकीर तलवारको धार लगाता और मुसकराते हुए गीत गाता रहा। घण्टोंतक यही क्रम चला। अन्तमें तरुणने कहा—'महात्मन्! मैं आपसे तलवारबाजीके माध्यमसे सर्वोत्तम ध्यान-पद्धतिको सीखने परम पवित्र कैलासवाले क्षेत्रसे आया हूँ। फकीरने घूरकर तरुणको देखा। तरुण बार-बार आनेका कारण बताता रहा। घण्टों बाद फकीर बुदबुदाये 'पचहत्तर वर्ष साधना करोगे ?'

फकीरका उत्तर तरुणको सन्न करनेवाला रहा। उसने बहुत ही विनम्र स्वरमें कहा—'महात्मन्! मैं सौ वर्षकी आयुमें सर्वश्रेष्ठ साधक बनकर क्या करूँगा? आप मुझपर दयाकर साधना शीघ्र पूर्ण करनेका उपाय बतायें।' फकीरने सर्द स्वरमें कहा कि 'चलो सत्तर वर्ष।' तरुणने एक बार फिर गुरुसे दयाकी भीख माँगी। यह क्रम घण्टों चला। तब कहीं झेन फकीरने पसीजकर कहा कि साधनामें कम-से-कम ५० वर्ष तो चाहिये। तरुणके सामने धर्मसंकट था कि क्या करे? यदि वह स्वदेश लौटता तो जगहँसाई होती और यहाँ रहे तो साधनाका परम पद वृद्धावस्थामें आता। इस विकट स्थितिमें तरुण गुरुके पैरोंमें सिसक-सिसककर रोने लगा। उसके रोते-रोते भी घण्टों गुजरे। अन्तमें फकीरने उठते हुए कहा—'देखो, आजसे ही साधना-ध्यान शुरू करो। उसमें जितना समय लगेगा, लग जायेगा।'

तरुण आनन्दसे नाचने लगा। तभी फकीरने गुरुतर गम्भीर स्वरमें कहा—'मेरी एक ही शर्त है कि मैं जो कहूँगा, तुम वही करोगे।' तरुणने बिना सोचे-विचारे कहा कि 'हे महात्मन्! मुझे स्वीकार है।' झेन फकीर तरुणको कुटियामें ले गये और पवित्र भस्मीसे अभिषेक किया। फकीरने आदेश दिया कि आजसे तलवार या शस्त्रोंको हाथ नहीं लगाओगे। आश्रमकी गायोंको चराओ और उनका दूध पकाओ। यह कहकर फकीर बिजलीकी तरह निकला और देखते-ही-देखते घने वनमें अदृश्य हो गया। पलक झपकते झेन खापा गाँवके बढ़ईके घर पहुँचा। बढ़ईसे लकड़ीके दो खाण्डे (तलवारें) बनवायीं। खाण्डोंको लिये नाचते-झूमते फकीर आश्रममें प्रकट हुआ। आश्रममें प्रदोषकालमें तरुण गायोंका दूध निकाल चुका था। उसने चूल्हा जलाया। बड़े कलशमें छानकर दूध भरा। जैसे ही तरुणने दूधमें पानी डालना चाहा, सड़ाकसे खाण्डेकी मार पड़ी। तरुण मारसे कराह उठा।

दूसरे दिन, तरुणद्वारा गायोंके दूध-दोहनकी बाल्टीसे दूध छलका कि गलतीपर पुनः खाण्डेकी मार पड़ी। झेन फकीर दूधके कम पकनेपर भी गलती बतानेके स्थानपर खाण्डा लहराता। तरुणके वसन्त-दर-वसन्त बीते, पर दूध दोहने, पकाने और परोसनेमें कमीपर खाण्डेका तेज प्रहार होता रहा। वह मन-ही-मन सोचता कि गुरुजी तलवारकी साधना कब शुरू करेंगे। वह गलती होनेपर गुरुकी छायासे खाण्डेकी मारसे बचनेका जतन करता अथवा दूध उफनते ही हवाकी सरसराहटसे खाण्डेकी मारका अनुमान लगाकर बचनेका उपक्रम करता। उसके लिये हर दिन पिटाईसे बचना ही ध्यान-साधना बना था।

इस रोचक कथाके अन्तिम पड़ावके रूपमें वर्षों बाद झेन फकीरके गुरुभाई आये। उन्होंने उलाहना दिया कि अब आनन्द है। चेला काम कर रहा है। फकीरने उत्तर दिया कि तलवार-ध्यान क्या खाक सीखेगा, दूध पकानातक नहीं आता। लो, आज तुम और मैं असली तलवारसे इसकी गलतीकी सजा देंगे। तरुणका ध्यान नंगी तलवारोंके भयसे काँप उठा। उसके हाथ डगमगाये और घड़ेसे दूध छलका। दोनों झेन फकीर नंगी तलवार लिये मारनेके लिये दौड़े। तरुण अपने बचावमें निहत्था लगा था। वह बचनेपर ध्यान केन्द्रित किये रहा। वह बिजलीकी तरह हरकतमें आया। तलवारोंकी धारोंसे बचनेके लिये अपनी गति तेज की। शरीरको कुशल नटों-सा साधा। वह नंगी तलवारोंपर नृत्य कर रहा था। आखिर उसने दोनोंको गिराकर उनकी तलवार उन्हींके सीनेपर रख दी। सुखद आश्चर्य यह रहा कि दोनों फकीरोंने ताली बजाकर अट्टहास किया! तरुण हतप्रभ हुआ! झेन फकीरने उसके मस्तकको छूकर विश्वका सर्वश्रेष्ठ तलवार ध्यान-साधक घोषित किया। उन्होंने कहा—'हे पुत्र! हमने तुम्हें बचावके द्वारा ध्यान-साधनाका महारथी बनाया है। तभी तुम सर्वश्रेष्ठ तलवारबाजोंको पराजित कर सके। इसे रक्षा-ध्यान कहते हैं।'

समरूप रहकर ही क्रोधपर नियन्त्रण

(श्रीविजयजी सिंगल)

मानवीय कष्टोंके विभिन्न कारणोंमेंसे क्रोध एक प्रमुख कारण है। जब कोई अपना आपा खो देता है, तो वह अपना विवेक भी खो देता है और ऐसे काम कर बैठता है, जिसके कारण उसे बादमें पछताना पड़ता है। ऐसा अविवेकपूर्ण व्यवहार न केवल सम्बन्धित व्यक्तिके लिये बल्कि उसके आसपासके अन्य लोगोंके लिये भी समस्याएँ पैदा कर देता है। भगवद्गीतामें क्रोधके वशीभूत रहनेवालोंको आसुरी प्रकृतिका और क्रोधसे मुक्त लोगोंको दैवीय प्रकृतिका कहा गया है। वास्तवमें श्रीकृष्णने क्रोधको नरकके तीन द्वारोंमेंसे एक घोषित किया है। 'नरकके तीन द्वार हैं—काम, क्रोध तथा लोभ। इन तीनोंको त्याग देना चाहिये; क्योंकि इनसे जीवका पतन होता है।'

श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ अपने संवादमें क्रोधकी कार्यशैलीका विश्लेषण किया है। यह पूछे जानेपर कि ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो व्यक्तिको उसकी अपनी इच्छाके विरुद्ध भी मानो बलपूर्वक पाप करनेके लिये प्रेरित करती है, श्रीकृष्णने उत्तर दिया कि समस्याका मूल कारण है वासना, जो अतृप्त रहनेपर क्रोधके रूपमें प्रकट होती है। यह मानव-जातिकी सर्वभक्षी और सबसे बड़ी शत्रु है। वासनाको मनुष्यका सतत शत्रु कहा गया है, क्योंकि अग्निकी भाँति इसकी भूख कभी भी पूर्णत: तृप्त नहीं होती।

गीतामें क्रोधके बारेमें कहा गया है कि जब कोई व्यक्ति किसी वस्तुके सम्पर्कमें आता है तो उसके लिये उसके मनमें एक लगाव (राग या द्वेष) विकसित हो जाता है। वह उस वस्तुको पसन्द या नापसन्द करने लगता है। ऐसी पसन्द या नापसन्दसे उस वस्तुको पाने या उससे छुटकारा पानेकी इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छाकी पूर्ति न होनेसे क्रोधकी उत्पत्ति होती है। इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करनेसे उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है और कामनाकी पूर्ति न होनेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे भ्रम पैदा होता है, जिससे स्मृतिकी हानि होती है अर्थात् व्यक्ति भूल जाता है कि उचित क्या है और अनुचित क्या है। स्मृतिकी हानिके फलस्वरूप बुद्धिमें गिरावट आती है। बुद्धिके नाशके साथ मनुष्यका नाश होता है।

क्रोधसे मुक्तिको आत्मिक ज्ञान प्राप्त करनेकी आवश्यक शर्तोंमेंसे एक महत्त्वपूर्ण शर्त घोषित किया गया है। केवल उसी व्यक्तिकी बुद्धि स्थिर होती है, जो कि क्रोधसे मुक्त है। श्रीकृष्णने आगे कहा है कि केवल वही व्यक्ति इस संसारमें सुखी रह सकता है, जो काम और क्रोधके आवेगोंको सहन करनेमें समर्थ है। भगवद्गीतामें केवल लक्षणोंको रोकनेके बजाय, इसमें क्रोधके मूल कारणसे निपटनेपर जोर दिया गया है।

जब इन्द्रियाँ भौतिक दुनियासे सम्बन्धित विभिन्न विषयों (जैसे अलग-अलग लोग, धन या सत्ताकी प्रतिष्ठा इत्यादि)-के सम्पर्कमें आती हैं तो मनुष्यमें उनको प्राप्त करनेकी आकांक्षा प्रकट होती है। प्रत्येक इन्द्रिय अपनेसे सम्बन्धित विषयोंके प्रति राग और द्वेषका भाव रखनेके लिये प्रेरित करती है। श्रीकृष्णने यह समझाया है कि मनुष्यको पसन्द और नापसन्दका दास नहीं बनना चाहिये, क्योंकि यह दोनों ही आध्यात्मिक विकासमें बाधा डालते हैं। दूसरे शब्दोंमें, अपनी पसन्द और नापसन्दको संयत करके व्यक्ति अपनी इच्छाओं, क्रोध और भय आदिसे मुक्त हो सकता है।

श्रीकृष्णने बार-बार चित्तकी समताके महत्त्वपर प्रकाश डाला है। जो कोई मनुष्य सफलता-असफलता, हानि-लाभ आदिमें समरूप होकर रहता है, क्रोध उसपर कभी भी हावी नहीं हो सकता। ऐसा समभाववाला व्यक्ति स्वार्थपूर्ण वासनाओं, अनुचित अपेक्षाओं तथा क्रोधके अकस्मात् विस्फोटसे उत्पन्न परेशानियोंमें नहीं फँसता।

['दैनिक ट्रिब्यून' से साभार]

कौन-सा मार्ग ग्रहण करें ?

(प्रो० श्रीरामचरणजी महेन्द्र)

एक महोदय लिखते हैं, 'मैंने आपके अनेक लेख और पुस्तकें पढ़ी हैं, पर एक चीज मेरे दिलमें हमेशा यह खटकती रहती है कि बेईमानी क्यों फलती-फूलती है ?' आप कहते हैं—'लक्ष्मी उसीकी दासी है, जो ईमानदारीसे व्यापार या सच्चे मनसे परिश्रम करते हैं।' मैं परिश्रम करता हूँ, सदा ईमानदार रहता हूँ, पर इन दोनोंके बावजूद न मुझे लक्ष्मी मिली है और न शान्ति ही, सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त नहीं हुई। आखिर बतलाइये मैं अब क्या करूँ ? ईमानदारीके रास्तेमें भूख, विवशता, गरीबी है। परिश्रम और ईमानदारीसे काम कर-करके मैंने अपना स्वास्थ्य खो दिया और साथ ही लक्ष्मीकी कृपा भी! अब प्रार्थना यह है कि मेरी गुत्थी सुलझा दें कि चोरी, बेईमानी, कालाबाजारी, रिश्वत, घूसखोरी और दूसरोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेसे क्यों महल खड़े होते जाते हैं और इसके विपरीत सच्चे मजदूर, नेकनीयत इन्सान और ईमानदारको क्यों दाने-दानेके लिये तरसना पड़ता है ? किसको सच्चा मानूँ ? आपके लेखोंको या समाजके इस उत्थान-पतनको ?

ईमानका सम्बन्ध मनुष्यके गुप्त मनसे है। हमारी अन्तरात्मा जिस कार्यको उचित कहती है या स्वीकार करती है, उस आचरणको करनेवाला ईमानदार कहलाता है। ईमानदारीसे कार्य करनेमें हमें अन्दरसे ही एक गुप्त शान्ति और सन्तोषका अनुभव होता है। इसके विपरीत आत्माका हननकर बेईमानीसे कार्य करनेपर हमारा गुप्त मन हमें अन्दर-ही-अन्दर कचोटता रहता है। हमें शान्ति नहीं मिलती। हमेशा यह गुप्त भय रहता है कि हमारी बेईमानी या चोरी किसीको किसी दिन किसी भी अवसरपर प्रकट न हो जाय। जैसे जलसे शरीर शुद्ध होता है, वैसे ही सत्याचरणसे मन और बुद्धि पवित्र हो जाते हैं।

हनन की हुई आत्मा ही हमें बेईमानीकी ओर जाने देती है और दुष्कर्म कराती है। असत्य या बेईमानीके कार्यद्वारा असत्य कार्य करने, रिश्वत, घूस, चोरबाजारी आदि चोरियाँ करनेसे धीरे-धीरे हमारी अन्तरात्मा मर जाती है। हनन की हुई आत्मामें सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, उचित-अनुचितका विवेक नहीं रहता। अतः बहुत-से व्यक्ति चोरी करते हुए भी बाहरसे सन्तुष्ट-से प्रतीत होते हैं, पर बुरे कार्योंकी सूक्ष्म रेखाएँ अन्तश्चेतनाके ऊपर अंकित होती रहती हैं और मनपर सदा आघात करती हैं। एक-न-एक दिन पाप प्रकट होता ही है और करनीका फल मिलता ही है।

ईमानदारीके मार्गके साथ आपको आत्माकी दैवी शक्तियोंका भी सहयोग मिलता रहेगा। सच्चे व्यक्तिको कभी किसी गुप्त भेदके प्रकट होनेका कोई भय नहीं रहता। वह तो खरा है। चाहे किसी कसौटीपर चढ़ा लीजिये, सदैव चमकता ही रहेगा। सत्, चित्, आनन्द-स्वरूप आत्मा इसीलिये इस भूमण्डलपर भेजा गया है कि वह सत्यका ही व्यवहार करे, असत्य या झूठके अन्धकारसे बचा रहे। जो व्यक्ति यह समझता है कि बेईमानीसे लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंककर बढ़ता रहेगा, वह वास्तवमें बड़ी भूल करता है। बेईमानी, चोरी, रिश्वत तो एक प्रकारकी अग्नि है। वह कब छिपती है ? उसे चाहे सौ कपड़ोंमें लपेटकर रखा जाय, एक-न-एक समय कपड़ोंको जलाकर प्रकट हो ही जाती है। ईश्वरने आपको 'सत्यं शिवं सुन्दरं'से युक्त आत्मा (अर्थात् अपना दिव्य अंश) इसीलिये दिया है कि आप असत्यसे बचकर सत्यके, ईमानदारीके, प्रकाशके मार्गको ही ग्रहण करें।

बेईमानी चार दिन ही फलती-फूलती-सी दीखती है। वास्तवमें वह अवनतिका ही रूप होती है। दीपक जब बुझनेको होता है, तब तेजीसे चमककर शान्त हो जाता है। इसी प्रकार बेईमानीकी दौलतसे, रिश्वतके धनसे घर-परिवार क्षणभरके लिये समृद्ध प्रतीत होते हैं; पर चोरीके प्रकट होते ही वे ऐसे गहरे खड्डेमें गिर पड़ते हैं, जिससे निकलना असम्भव हो जाता है। वे दीर्घकाल-तक असत्यके अन्धकारमें भटकते रहते हैं। अतः पहलेसे ही ईमानपर टिके रहनेका व्रत ले लेना चाहिये।

बेईमानीकी दौलत उसीके साथ नष्ट हो जाती है। क्या आपने किसी बेईमानकी सन्तानको फलते-फूलते देखा है ? अगर बेईमान फलते-फूलते रहते, तो इस संसारमें सभी बेईमानी, ठगी और चोरीपर आ जाते। सत्य संसारसे लुप्त हो जाता, केवल पाप ही रहते। चोरों,

ठगों, डकैतों और राक्षसोंका नित्य राज्य हो जाता। हमारा समाज निठल्ले कामचोरोंसे भर जाता। पर ईश्वरका नियम ही कुछ ऐसा है कि सच्चे और ईमानदार गरीब होकर भी पूजे जाते हैं; झूठे और बेईमान अमीर होकर भी तिरस्कृत होते हैं। चोरकी झोपड़ीपर कभी फूँसतक नहीं रहता।

ईमानदारीके एक पैसेमें बेईमानीके लाख रुपयेसे अधिक बल है; क्योंकि वह स्थायी है। उस पैसेके साथ सत्कर्मका गौरव जुड़ा हुआ है।

आप सत्यके यात्री हैं। सत्य-स्वरूप आत्मा हैं। झूठ और मिथ्याचारके सुहावने दीखनेवाले भयानक जंगलोंमें मत भटकिये। ईमानदारीकी सूखी रोटियाँ खाते रहिये, तो स्वस्थ रहेंगे। बेईमानीका हलुआ-पूरी आपका स्वास्थ्य नष्ट कर देगा। अधर्मसे धन जमा करके सम्पत्तिशाली बननेकी अपेक्षा यही अच्छा है कि मनुष्य सत्य आचरण करता हुआ गरीब बना रहे। जो पैसा दूसरेको रुलाते हुए हड़प लिया जाता है, वह लेनेवालेको नष्ट करके ही विदा होता है।

सत्यता और ईमानदारी धर्मात्मा मनुष्यके भूषण हैं। ये ईश्वरकी सत्ताके द्योतक हैं। प्राणान्त होनेपर भी इन दिव्य गुणोंका ह्रास मत होने दीजिये।

यदि हमारी आजीविका झूठ, अन्याय, छल, कपटसे कमायी हुई है, तो उसपर पलनेवाली हमारी सन्तान भी उसका उपयोग करनेपर अधिकाधिक अन्याय, झूठ और धूर्तताकी ओर प्रवृत्त होती जायगी और हमारी आनेवाली पीढ़ीको भी दुखी बना डालेगी। अतएव सत्य आचरण और खरे पसीनेकी कमाईसे ही शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। जिसे कमाते और खाते दुनियाके किसी व्यक्तिके सामने आँखें नीची न करनी पड़े, वही ईमानदारीकी कमाई है। यह हमें आत्मनिर्भर रहना सिखाती है और स्वाभिमानकी वृद्धि करती है।

एक विद्वान्‌के ये वचन सदा स्मरण रखनेयोग्य हैं, 'तुम्हारा मन जब ईमानदारीको छोड़कर बेईमानीकी ओर चलने लगे, तब समझना चाहिये कि अब तुम्हारा सर्वनाश निकट आनेवाला है। बेईमानीसे पैसा मिल सकता है, पर देखो, सावधान रहना। उस पैसेको छूना मत! क्योंकि वह आगकी तरह चमकीला तो है, पर छूनेपर जलाये बिना नहीं रहता। ईमानदारीसे चाहे थोड़ी ही सम्पत्ति भले ही कमायी जाय, पर वह पीढ़ियोंतक कायम रहेगी और बढ़ती रहेगी, जबकि बेईमानीके विशाल वृक्ष एक ही झोंकेमें उखड़कर गिर जाते हैं। एक दिन वह अवश्य उन्नति करेगा, जो दूसरोंके लाभको अपने ही लाभकी तरह देखेगा। यह मत समझो कि ईमानदारको भोंदू और अकर्मण्य समझा जायगा। मूर्ख ही ऐसा ख्याल कर सकते हैं। विवेकवानोंकी दृष्टिमें न्यायशील और ईमानदार आदमी ही बड़ा समझा जायगा, फिर चाहे वह गरीब ही क्यों न हो।'

सम्पूर्ण जीवन ही ईश्वरकी पूजा बन जाय

(स्वामी श्रीसच्चिदानन्देन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

प्रातःकाल एक घण्टा पूजा, सायंकाल पन्द्रह मिनट मंगला आरती—इतना छोड़कर अन्य शेष समय पूर्ण रूपसे सांसारिक व्यवहारमें ही व्यर्थ हो रहा है। ऐसी परिस्थितिमें मुझे कौन-सी साधना उपलब्ध हो जायगी? यह प्रश्न आज सबके सामने है। मेरी भावना यही है कि इस समय जनताका अधिकांश समय लोक-व्यवहार ही निगल रहा है। इसके लिये यह लेख एक निर्देशन है।

हम जो समय लोक-व्यवहारमें लगाते हैं, उसके अनुरूप हमें फल प्राप्त होता है—यह एक गलत समझ है; क्योंकि हमारे लिये मिलनेवाला प्रतिफल हमारे श्रमके अनुगुण नहीं रहता है, बल्कि ईश्वरके अनुग्रहके अनुरूप रहता है। हमारा कर्तव्य इतना ही है कि हमें काम करना है। उसके लिये प्रतिफल देकर हमारा योगक्षेम रखनेका कार्य ईश्वरका है।

केवल भगवान्‌की पूजा करनेके लिये आपके पास कालावकाश है। अधिक परमार्थ-साधनाके लिये भी कालावकाश नहीं है। इस विषयको ज्यों-का-त्यों स्वीकार करके यह उत्तर लिखता हूँ, देवपूजार्थ आवश्यक फूल, तुलसी, गन्ध, धूप, दीप—इत्यादि सामग्रियोंमें भी आप ईश्वर-सम्बन्ध जोड़नेका अभ्यास करें। अपने आँगनके अल्प भागमें सुन्दर पूजाके योग्य फूलोंके पौधे लगाकर, स्वयं ही उनमें पानी दें, परिवारवालोंमें भी उस

कार्यके प्रति आदरबुद्धि उत्पन्न कीजिये, इस प्रकार परमेश्वरका हर कार्यमें स्मरण करें। मनुष्य-जीवन किस प्रकार होना चाहिये—इसके लिये फूलोंके दर्शनमात्रसे हम लोगोंको एक सुन्दर सन्देश प्राप्त हो जायगा।

फूलोंका जीवन अत्यन्त अल्पकालका होता है, परंतु वे जितने समय बने रहते हैं, उतने समयतक अपने मुखको उल्लाससे खिलाकर अपनी सन्तोषरूपी सुगन्धको चौतरफा फैलाते रहते हैं। निर्दुष्ट, आरोग्ययुक्त, सौंदर्यसे परिपूर्ण परिमल (सुगन्धित) जीवन ही ईश्वरका अनुग्रह है। फूल यह सन्देश सबके लिये सर्वदा देते रहते हैं। फूलोंके जैसे ही हमारा शरीर और मन भी बने, हमारे शरीर और मन सहज प्रकारसे हमारे मूल स्थान जो परमेश्वर हैं, उनके संकल्पके अनुरूप हो जायँ। इसे वैसे ही निर्मल एवं परिशुद्ध करना चाहिये, जैसे निर्मल एवं परिशुद्ध पुष्प होता है। हम जो लाये हैं, उन फूलोंको परिशुद्ध भावनासे ईश्वरकी पूजाके समय अर्पण करना चाहिये। उस अर्पणकालमें—'हे देव, इस हृदयको तुमको अर्पण कर रहा हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। ऐसा मुझे बनाओ कि मैं तेरे संकल्पके अनुरूप जीवन-यापन करूँ, सर्वदा आपमें रहते हुए मैं आपके अनुग्रहसे सुख-शान्ति प्राप्त करके आसपासके लोगोंको भी सुख-शान्तिका मार्गदर्शन करूँ, ऐसा अनुग्रह करो।' इस विधिसे मनमें प्रार्थना करते रहना चाहिये।

इसी प्रकार जो धूपबत्ती हम परमेश्वरको अर्पण करते हैं, वह भी हमारे जीवनका संकेत होना चाहिये। कंजूसी करते हुए एक छोटी-सी अगरबत्तीको जलाकर कहीं दीवारके कोनेमें लगानेके अभ्यासको छोड़ देना चाहिये। दशांग चूर्णको अंगारमें रखकर सुगन्धित धूपको अर्पण करनेकी परम्परा हृदयकी औदार्यबुद्धिको बढ़ाता है। हमें धूपके द्वारा आसपासके अन्य प्राणियोंको भी दयामय परमेश्वरसे सम्बन्धको स्मरण कराना है। भगवान्‌के सामने घीका दीपक जलाते समय यह बात याद आनी चाहिये कि स्वयंप्रकाशरूप परमेश्वरसे चेतनरूप हम सब आये हैं और हमारी जीवनज्योति सुख-शान्तिसे अन्वित होकर आगे बढ़ रही है, यह उन्हींकी कृपा है। इसके लिये भक्ति नामका घी ही मूल है।

हम जो तैयार कर रहे हैं, वह भोजन हमारी रुचिके अनुरूप होना स्वाभाविक है, परंतु वह अन्न परमेश्वरको अर्पण करके उनके प्रसादरूपमें स्वीकार किया तो उसका स्वाद दोगुना हो जाता है। उससे भूख मिटनेके अलावा तुष्टि, पुष्टि, आरोग्य और चित्तशुद्धिकी भी प्राप्ति होती है एवं जीवनमें जो व्यवहार हम कर रहे हैं, वह सब भगवान्‌की सेवा है, ऐसी भावना भी हम लोगोंको प्राप्त हो जाती है।

भागवतमें एक वचन है 'हे भगवन्! तुम्हारे लिये अर्पित फल-फूल, गन्ध इत्यादिके सेवनके द्वारा हम तेरी मायाको जीतनेकी क्षमता प्राप्त करें।' इस वाक्यके अभिप्रायको हम सबको ठीक-ठीक याद रखना चाहिये। इस लोकमें उत्पन्न वस्तुओंके द्वारा उत्पन्न कर्णसुखद शब्द, सुखप्रद स्पर्श, सुन्दर रूप, जिह्वाको आकर्षित करनेवाला स्वाद, नाकको वशमें रखनेवाली परिमल-सुगन्धि, यह सब मनुष्यके लिये ही है—ऐसी भावना आजकल लोगोंमें तेजीसे बढ़ रही है। पंचभूतसे बनी प्रकृतिको दास बनाकर ही मनुष्य सुखको लूटना चाहता है। परंतु यहाँ हमें धोखेमें फँसनेकी सम्भावना ही अधिक है, क्योंकि यथार्थमें प्रकृति परमेश्वरके वशमें है। केवल अनुग्रहके द्वारा ही हम इह-परसुखके लिये आवश्यक सामग्रीको भी प्रकृतिसे प्राप्त कर सकते हैं। परंतु जब हम परमेश्वरको विस्मरण करके अहंकारकी पूजा आरम्भ करते हैं, तब वह प्रकृति ही माया बनकर हम लोगोंको गलत रास्तेकी तरफ खींच लेती है। तब यहाँ हमको इह सुखके लिये आवश्यक सामग्री भी उपलब्ध नहीं होती। मिलनेपर भी उससे हमको जो उपभोग प्राप्त होना चाहिये था, वह गायब हो जाता है।

आप प्रातःकाल जो पूजा कर रहे हैं, उसको नित्य व्यवहारके लिये आप संकेत बनाइये। आप चाहे किसी भी व्यवहारमें लग जाइये, वहाँ आपको उपलब्ध होनेवाली सामग्री और सुविधा भी परमेश्वरकी आराधनाके लिये उपकरणमात्र है। इतना ही नहीं, आपका सम्पूर्ण जीवन ही ईश्वरकी आराधना है—इस प्रकार सतत भावना करिये। आपके लिये आवश्यक जो सुख-शान्तिका भोग है, वह तो ईश्वरको अर्पण करके उससे प्रसादरूपसे प्राप्त भोग है—ऐसी भावना निरन्तर चलाते रहिये। इसके अतिरिक्त और कोई भी साधनाकी आवश्यकता नहीं है।

तीर्थ-दर्शन—

रुद्रेश्वर महादेव

(श्रीप्रदीपकुमारजी)

छत्तीसगढ़के जिला बिलासपुर मुख्यालयसे २७ कि०मी० की दूरीपर रायपुर राजमार्गपर भोजपुर ग्राम स्थित है। इसके अन्दर एक सँकरी सड़कद्वारा ७ कि०मी० जानेपर ग्राम ताला स्थान है, जो नियारी नदीके किनारेपर बसा है। इसी स्थानपर रुद्रेश्वर महादेवकी अद्भुत प्रतिमा अवस्थित है। मन्दिर पूर्णतया नष्ट हो चुका है, पर महादेवकी यह अद्भुत प्रतिमा तालाबन्द कक्षमें पुरातत्त्व विभागने रक्षित कर रखी है। यह प्रतिमा पूर्णतया अपने प्राचीन मूलरूपमें विद्यमान है।

रुद्रेश्वर महादेवकी यह अद्भुत प्रतिमा लगभग ९ फीट ऊँची एवं ५ टन वजनी है तथा विशाल आकृतिकी है। यह शिवप्रतिमा अबतककी ज्ञात समस्त प्रतिमाओंमें विशिष्ट कोटिकी है। इस मूर्तिमें जीव-जन्तुओंको बड़ी ही सूक्ष्मतासे उकेरकर सम्भवत: उसके गुणोंके सहधर्मीके प्रतीकके रूपमें प्रतिमाके विभिन्न अंग निर्मित किये गये हैं, जैसे—

(१) सिरका भाग पगड़ीनुमा सर्पकी कुण्डलीके रूपमें उकेरा गया है।

(२) दोनों कानोंको मयूराकृतिरूपमें निर्मित किया गया है।

(३) मस्तकपर उलटे गिरगिटकी तिकोनी पूँछ महादेवके त्रिनेत्रको प्रदर्शित कर रही है।

(४) नाकको उलटे गिरगिटके मुखसे प्रदर्शित किया गया है।

(५) भौंहोंको उलटे गिरगिटके पिछले पैरोंसे इंगित किया गया है।

(६) दोनों मूँछें—दो मछलियोंद्वारा प्रदर्शित की गयी हैं।

(७) ठोड़ी केकड़ेद्वारा प्रदर्शित है।

(८) आँखें सिंहकी आँखोंकी तरह प्रदर्शित हैं।

(९) पलकें मेढककी आकृतिद्वारा निर्मित हैं।

(१०) पुतलियाँ अण्डोंद्वारा प्रदर्शित हैं।

(११) वक्ष:स्थल दोनों ओर मूँछोंयुक्त मकर-रूपमें है।

(१२) उदरभाग एक बड़े कुम्भकी आकृतिमें है।

(१३) मगरमच्छद्वारा दोनों कन्धोंको प्रदर्शित किया गया है।

(१४) गैंडेकी तरह सुदृढ़ भुजाएँ निर्मित की गयी हैं।

(१५) पंचमुखी नागके समान उँगलियाँ दर्शायी गयी हैं।

(१६) चार युवतियोंके रूपमें कमर एवं कटिप्रदेश प्रदर्शित किया गया है।

(१७) सिंहके मुखके रूपमें दोनों घुटने प्रदर्शित किये गये हैं।

(१८) घंटाकाररूपमें अण्डकोष प्रदर्शित हैं।

(१९) लिंग कछुएके मुखद्वारा प्रदर्शित किया गया है।

प्रांगणमें ही देवरानी-जेठानीके मन्दिर पूर्णतया भग्नावशेषके रूपमें अवस्थित हैं, पर महादेवके मन्दिरका कहीं कोई निशान नहीं है। पुरातत्त्व विभाग इन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करनेमें व्यस्त है। पुरातत्त्व विभागने

प्रांगण तथा नदीके किनारेके भागोंको सुन्दर बगीचेमें विकसित कर दिया है, अत: यह एक सुन्दर पिकनिक स्पॉट बन गया है।

पहुँचनेका मार्ग एवं ठहरनेका स्थान—हवाई मार्गहेतु रायपुर हवाई अड्डा है, जहाँसे बिलासपुर ११७ कि०मी० दूर है। एक छोटा हवाई अड्डा बिलासपुरमें भी है। रायपुरसे निरन्तर २४ घण्टे बसें बिलासपुरको जाती हैं। रेलमार्गसे यह मुम्बई-हावड़ा लाइनोंके मध्य एक बड़ा जंक्शन है। यह भोपाल, दिल्ली तथा भारतके सभी मुख्य नगरोंसे जुड़ा है। बिलासपुरसे सीधी बसें तालातक जाती रहती हैं। निजी वाहनसे जाया जा सकता है। ठहरनेके स्थान बिलासपुरमें ही हैं। अत: वहीं ठहरना चाहिये। ताला ग्राममें न तो ठहरनेकी व्यवस्था है और न ही खान-पानकी। केवल चाय-नाश्ता ही मिलता है।

संत-चरित—

गृहस्थ सन्त परम भागवत पण्डित मिहीलालजी

(श्रीराजकमलजी मिश्रा)

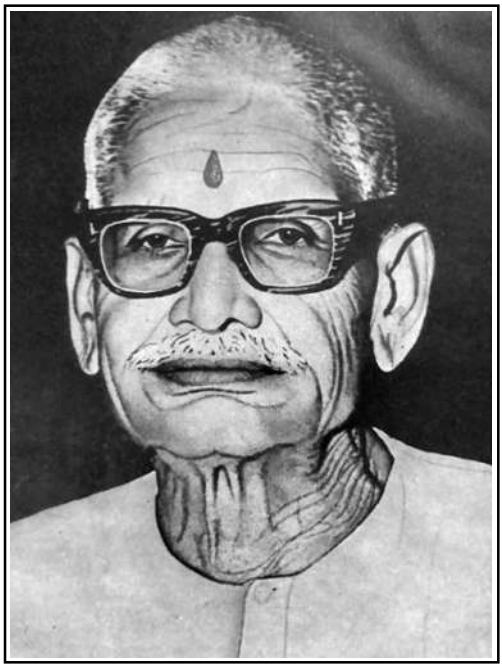

अलीगढ़ जिलेके अन्तर्गत मुरसानसे करीब ३ मील दूर पिथा नामक ग्राममें पूज्य पण्डितजीके पितामह पण्डित नेकरामजी भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त, संस्कृतके अच्छे विद्वान् तथा भागवतके अनन्य प्रेमी निवास करते थे। पूज्य पण्डितजीके पिताका नाम पण्डित कीरतरामजी एवं माताका नाम गौरा देवी था। इसी भक्त परिवारमें परम भागवत पण्डित मिहीलालजीका जन्म हुआ था।

कालान्तरमें किन्हीं कारणवश पूज्य पण्डितजीके पूर्वज आगरा जिलेके अन्तर्गत टूण्डलाके पास चूल्हावली ग्राममें आकर बस गये और वहीं रहने लगे। इसी कारण पण्डितजीका साधनामय जीवन अधिकतर चूल्हावलीमें ही बीता। अन्त समयमें वह टूण्डलामें आकर बस गये। वह हमेशा प्रभुसे अत्यन्त दुखी होकर सच्चा मार्ग बतानेकी प्रार्थना करते थे। सच्चे महात्माकी खोजमें दिन बीतने लगे। पूज्य पण्डितजी अध्यापक थे। अत: उनका ट्रांसफर (स्थानान्तरण) ग्राम खतौली जिला आगराकी पाठशालामें हुआ। वहींपर प्रधानाध्यापक पण्डित रेवतीरामने समर्थ गुरु परम सन्त डॉक्टर चतुर्भुज सहायजीके दर्शन कराये। उस प्रथम दर्शनके बारेमें पण्डितजी लिखते हैं कि 'उनके उन्नत ललाट, प्रकाशयुक्त चेहरेको देखकर मेरे हृदयमें प्रेम उमड़ पड़ा और मैंने जब उनके चरण स्पर्श किये तो उसी क्षण मेरा सारा दु:ख दूर हो गया और कुछ देर अपनेको भूल एक विचित्र दशामें चला गया। इसके उपरान्त कुछ देर साधन कराया। मेरे हृदयपर अपना हाथ रख बतलाया, यह हृदय स्थान है। आप यहीं भगवान्‌का ध्यान कीजिये। उनके करकमलके स्पर्शसे ही प्रकाशकी एक विद्युत्-सी दौड़ गयी और उसका प्रभाव तीन दिनोंतक बना रहा।' उन्होंने कहा यह विद्या बताने तथा समझानेसे नहीं आती, मिलने-जुलने एवं साथ बैठनेपर ज्यादा आती है। बादमें उनकी साधना गुरुकृपासे इतनी ऊँची हो गयी कि एक दिन साधकोंने देखा कि इधर-उधरसे चींटियाँ उनपर आकर चढ़ने लगीं, जब ध्यान समाप्त हुआ तो साधकोंने देखा कि चींटियाँ आकर उनपर चढ़ी हुई हैं और वह वैसे ही ध्यानमग्न बैठे हैं। गुरुकी कृपादृष्टिसे वे दिनों-दिन

अध्यात्मकी उच्च सीढ़ियोंपर बढ़ते रहे।

उनका हृदय हमेशा दूसरोंको देखकर द्रवित हो जाता था। उन्हींके जीवनकी एक घटना है, उनके गाँवमें एक मेहतर रहता था। उसके पास खानेको अन्न नहीं, पहननेको वस्त्र नहीं, और रहनेको घर नहीं, ऐसी गरीबीमें उसने अपना एक मोहल्ला जहाँ वह कमाई करता था, २५ रुपयेमें गिरवी रख दिया। परम पूजनीय पण्डितजी महाराजके पास आयका एकमात्र साधन छोटी-सी नौकरीका था, जिसे वे पहले ही छोड़ चुके थे और उस जमानेमें २५ रुपये जुटाना कोई साधारण खेल नहीं था। फिर भी उन्होंने जैसे-तैसे प्रबन्ध करके उस मेहतरका मोहल्ला गिरवीसे मुक्त कराकर उसका दुःख दूर कर दिया।

१९६० ई० में वे विश्व-धर्म-सम्मेलनमें भाग लेने कोलकाता गये, जहाँ विश्वके समस्त धर्मोंके प्रतिनिधि आये हुए थे। जब मन्त्री महोदयका ध्यान इनकी ओर आकृष्ट किया गया, जो रामाश्रम सत्संग मथुराका प्रतिनिधित्व कर रहे थे, तो इनको ५ मिनटका समय दिया गया। विशाल जनसमूहको सम्बोधित करते हुए पण्डितजी बोले, 'एक पिताके चार पुत्र थे, अपने-अपने कार्यके लिये देश-विदेश चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने वहींकी भाषा सीख ली और वहींका पहनावा ले लिया। बहुत दिनों बाद वे मिले, परंतु एक-दूसरेको पहचान न सके, इससे आपसमें प्रेम पैदा नहीं हुआ। अध्यात्म वह है, जो यह पहचान करा दे कि वे सब एक ही पिताके पुत्र हैं, ताकि वे आपसमें प्रेम करने लगें। विज्ञान जितना ऊँचा उड़ रहा है, उतने ही उसके पंख भी जल रहे हैं। धरतीके इंसानको कहींसे शान्ति नहीं है। धर्मग्रन्थ, महापुरुष और महात्मा लोग शान्तिके सिद्धान्त तो बतलाते हैं, परंतु यह नहीं कहते कि शान्ति सिद्धान्त नहीं एक स्थिति है और जबतक मनुष्य इस स्थितिमें नहीं आयेगा, जीवनमें शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता और बिना शान्तिके जीवनमें व्यवहार भी अच्छा नहीं बन सकता। यह दुनिया सुन्दर व्यवहारकी भूखी है, मीठे शब्दोंकी प्यासी है। जो ज्ञान इस व्यवहारको नहीं सिखाता, वह कौड़ी दामका भी नहीं है।'

भारतके प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादजीने २९ दिसम्बर सन् १९६२ ई० को परम पूजनीय पण्डितजी महाराजसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। सदाकत आश्रम, पटनामें पण्डितजीसे भेंट हुई तो राजेन्द्र बाबूने पूछा, 'आपके यहाँ क्या होता है?' पण्डितजीने सादगीसे उत्तर दिया 'कुछ नहीं, केवल चित्त शान्तिका उपाय बताया जाता है।' इसके बाद डॉ० राजेन्द्र बाबू बोले, 'तीन-चार दिनोंका समय हमें भी दीजिये।' अतः १६ जनवरीसे १९ जनवरी १९६३ का समय उनके पास रहनेका निश्चित किया गया, जहाँ पण्डितजी महाराजने उनको साधना और ध्यान कराया। उस समय डॉक्टर राजेन्द्र बाबूने कहा, 'मुझे बड़ा दुःख है कि यह चीज मुझे बड़ी देरसे मिली है, यदि पहले मिलती तो आज समाजका नक्शा कुछ और होता।'

पण्डितजीने अपने नामके आगे सन्त, परमसन्त लिखा जाना कभी पसन्द नहीं किया। जब कोई इन उपाधियोंसे उन्हें सम्बोधित करता या पर्चेमें लिखा देता तो नाराज होते और कहते कि मैं कोई महात्मा नहीं, मैं सन्त अथवा गुरु भी नहीं हूँ। मुझे इन आभूषणोंको पहनना अच्छा नहीं लगता।

बराये नाम भी अपना नहीं बाकी निशाँ रखना,
न तन रखना, न मन रखना, न जी रखना, न जां रखना।

इस तरह आपने अपने नाम तथा हस्तीको इतना मिटाया कि देखनेवाले उन्हें ठीकसे समझ नहीं पाते थे, इस कारण कभी-कभी लोग आपको पहचाननेमें भूल कर जाते थे।

एक बार कोलकातासे आप ट्रेनसे वापस आ रहे थे। तीसरे दर्जेके डिब्बेमें बैठे थे, साथमें कुछ अन्य लोग जो आपसे परिचित नहीं थे, वह भी यात्रा कर रहे थे। उन्होंने देखा कि रास्तेके हर स्टेशनपर कुछ स्त्री-पुरुष आपसे मिलने आते, जिसमें उनके परिचित कुछ रेल अधिकारी भी थे। कई स्टेशन निकल जानेके बाद सहयात्रियोंमेंसे एकने पूछा, 'आप कौन हैं? आप अधिकारी मालदार तो नहीं लगते; क्योंकि तीसरे दर्जेके डिब्बेमें सफर कर रहे हैं। आप विद्वान् भी नहीं लगते; क्योंकि आपकी भाषा साधारण है। आप नेता भी नहीं लगते; क्योंकि आपका

जयकारा भी नहीं लग रहा है और आप सन्त या महात्मा भी नहीं लगते; क्योंकि आपकी वेशभूषा साधारण है। फिर आप कौन हो ?' आपने कहा कि भाई! यह लोग यह देखने आते हैं कि भारतमें ऐसा भी कोई आदमी है, जिसे कुछ भी नहीं आता।

जब लोग उनकी अधिक प्रशंसा करने लगते या कहते कि लाखों आदमी आज आपकी पवित्र वाणी सुनकर अपना जीवन पवित्र एवं भगवद्भजनमें लगा रहे हैं तो आप कहते कि यह आप लोगोंका भ्रम है। मैं तो रास्तेका एक पत्थर था, जो कोई भी आता, ठोकर मारता था। एक कलाकार (समर्थ गुरु परम सन्त डॉक्टर चतुर्भुज सहायजी)-की इस पत्थरपर नजर पड़ गयी। उन्होंने इस पत्थरको काट-छाँटकर एक मूर्ति बनायी। उस मूर्तिकी अगर मन्दिरमें पूजा हो रही है, तो यह उस मूर्तिकी नहीं बल्कि मूर्तिकार (कलाकार)-की पूजा हो रही है। ऐसे वह अनामी ही बने रहे।

सन् १९७४ की बात है, पूज्य पण्डितजी रामेश्वरम् एवं कन्याकुमारीकी यात्रापर पहुँचे। वहाँ समुद्रके बीचमें जो विवेकानन्द दरबार बना हुआ है, उसमें ध्यान मण्डपका एक कक्ष है। पण्डितजीने कहा, 'चलो, यहाँ थोड़ी देर ध्यान कर लें।' साथवाले भाइयोंने बताया कि उस समय उस मण्डपमें कोई नहीं था, पर ध्यान करनेके थोड़ी देर बाद फड़-फड़की आवाज हुई और कुछ लोग आकर बैठ गये। साथवाले भाइयोंने आँख खोलकर देखा तो कमरा लोगोंसे भरा हुआ था और सभी लोग आँख बन्द करके ध्यान कर रहे थे। जब ध्यान बन्द हुआ तो फिर वैसे ही शब्द करते हुए वे सब लोग बाहर निकल गये। पूरी विवेकानन्द शिलाको छान लिया गया, पर कोई नहीं मिला। जब रामकृष्ण मिशनके स्वामीजीसे भेंट हुई, तो उन्होंने बताया कि ऐसे महापुरुषोंके सत्संगका लाभ उठानेके लिये कभी-कभी देवता भी मनुष्य-शरीरमें आ जाते हैं।

एक समयकी बात है, बिहारका सत्संग प्रोग्राम करके पूज्य पण्डितजी वापस लौट रहे थे। जाड़ेके दिन थे, स्टेशनपर उन्होंने देखा कि एक भिखारी ठण्डसे काँप रहा है। उसके बदनपर कुर्तातक नहीं है, बस उसे बुलाया और अपना कुर्ता उसे पहना दिया, स्वयं बनियानपर कोट पहनकर आ गये। ऐसे ही एक बार एक धोबी बहुत बीमार था, उसके पास ओढ़नेको वस्त्र नहीं था। उसे अपना कम्बल उढ़ा आये, पर रातमें उसे किसीने चुरा लिया। प्रातः जब देखने गये तब पता चला तो उसे दूसरा कम्बल उढ़ा आये। दूसरे दिन भी यही हुआ, तो उसे अपनी रजाई उढ़ा आये।

चुपचाप यथासम्भव सभी दुखी प्राणियोंकी सहायता करते थे, पर उसको ज्ञान ना हो ऐसी कोशिश हमेशा रखते थे। वह कहा करते थे कि किसीसे घृणा न करो और पाप तो क्षमा भी किये जा सकते हैं, पर जो किसीसे घृणा करता है, वह ईश्वरको प्राप्त नहीं कर सकता है।

ऐसे ही अनेक घटनाएँ उनके जीवनकी हैं, जो यह बताती हैं कि इतने उच्च शिखरपर भगवद्दर्शन किये हुए उन महान् सन्तने कभी भी अपनेको बड़ा न मान हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य सबमें उस परम पिताका दर्शनकर अपनेको सदैव एक साधारण प्राणी माना, जिस कारण वह परम भागवत कहलाने लगे।

आपने किसीसे कोई मन्त्र, जप, पूजा-पाठ कोई इष्ट या गुरु छोड़नेको कभी नहीं कहा। जो जिस हालतमें मिला, अपने प्रेम तथा सेवाभावसे उसको वहींसे शान्तिका सन्देश दे उसका जीवन बदल दिया।

आपका जीवन 'सेवा करो एवं सेवा लेनेसे बचो' का था, जिसे आपने अपने जीवनमें करके दिखा दिया। आप दीन तथा समाजसे ठुकराये हुएको गलेसे लगाकर शान्ति एवं आनन्दका अनुभव करा देते थे।

सत्संगमें जानेके लिये कभी-कभी आप प्लेटफार्मकी जमीनपर बैठ घण्टों ट्रेनका इंतजार करते थे। कभी-कभी रिक्शा, तांगा, बैलगाड़ी या साइकिलसे भी सत्संगमें जानेके लिये सफर करनेसे गुरेज नहीं करते थे।

उनका विशेष जोर साधनके साथ-साथ व्यवहारपर था। वह कहा करते थे कि व्यवहार ही परमार्थकी कसौटी है, जिसको उन्होंने अपने जीवनमें पग-पगपर उतारकर दिखाया कि गुरुका सच्चा शिष्य कैसा होना चाहिये।

अनजाने कर्मका फल

एक राजा ब्राह्मणोंको एक ओर महलके आँगनमें भोजन करा रहा था। राजाका रसोइया खुले आँगनमें भोजन पका रहा था। उसी समय एक चील अपने पंजेमें एक जिंदा साँपको लेकर राजाके महलके ऊपरसे गुजरी। पंजोंमें दबे साँपने अपनी आत्मरक्षामें चीलसे बचनेके लिये अपने फनसे जहर निकाला। रसोइया जो भोजन ब्राह्मणोंके लिये पका रहा था, उस भोजनमें साँपके मुखसे निकली जहरकी कुछ बूँदें गिर गयीं। किसीको कुछ पता नहीं चला। फलस्वरूप वे सारे ब्राह्मण जो भोजन करने आये थे, उन सबकी जहरीला भोजन करते ही मौत हो गयी। अब जब राजाको सारे ब्राह्मणोंकी मृत्युका पता चला, तो ब्रह्महत्या होनेसे उसे बहुत दुःख हुआ।

ऐसेमें अब ऊपर बैठे यमराजके लिये भी यह फैसला लेना मुश्किल हो गया कि इस पाप-कर्मका फल किसके खातेमें जायगा?

१. राजा—जिसको पता ही नहीं था कि खाना जहरीला हो गया है।

२. रसोइया—जिसको पता ही नहीं था कि खाना बनाते समय वह जहरीला हो गया है।

३. चील—जो जहरीला साँप लिये राजाके महलके ऊपरसे गुजरी। या

४. वह साँप—जिसने अपनी आत्मरक्षामें जहर निकाला।

बहुत दिनोंतक यह मामला यमराजकी फाइलमें अटका रहा। फिर कुछ समय बाद कुछ ब्राह्मण राजासे मिलने उस राज्यमें आये और उन्होंने किसी महिलासे महलका रास्ता पूछा। उस महिलाने महलका रास्ता तो बता दिया, पर रास्ता बतानेके साथ-साथ ब्राह्मणोंसे ये भी कह दिया कि 'देखो भाई!··· जरा ध्यान रखना··· वह राजा आप-जैसे ब्राह्मणोंको खानेमें जहर देकर मार देता है।'

बस जैसे ही उस महिलाने ये शब्द कहे, उसी समय यमराजने फैसला ले लिया कि उन मृत ब्राह्मणोंकी मृत्युके पापका फल इस महिलाके खातेमें जायगा और इसे उस पापका फल भुगतना होगा।

यमराजके दूतोंने पूछा—'प्रभु ऐसा क्यों?'

जब कि उन मृत ब्राह्मणोंकी हत्यामें उस महिलाकी कोई भूमिका भी नहीं थी।

तब यमराजने कहा—दूतो! ध्यान दो, जब कोई व्यक्ति पाप करता है, तब उसे बड़ा आनन्द मिलता है। पर उन मृत ब्राह्मणोंकी हत्यासे न तो राजाको आनन्द मिला, न ही उस रसोइयेको आनन्द मिला, न ही उस साँपको आनन्द मिला और न ही उस चीलको आनन्द मिला।

पर उस पाप-कर्मकी घटनाका बुराई करनेके भावसे बखानकर उस महिलाको जरूर आनन्द मिला। इसलिये राजाके उस अनजाने पाप-कर्मका फल अब इस महिलाके खातेमें जायगा।

बस, इसी घटनाके तहत आजतक जब भी कोई व्यक्ति जब किसी दूसरेके पाप-कर्मका बखान बुरे भावसे करता है, तब उस व्यक्तिके पापोंका हिस्सा उस बुराई करनेवालेके खातेमें भी डाल दिया जाता है।

अक्सर हम सोचते हैं कि हमने जीवनमें ऐसा कोई पाप नहीं किया, फिर भी हमारे जीवनमें इतना कष्ट क्यों आया?

ये कष्ट और कहींसे नहीं, बल्कि लोगोंकी बुराई करनेके कारण उनके पाप-कर्मोंसे आया होता है, जो बुराई करते ही हमारे खातेमें ट्रांसफर हो जाता है।

[सोशल मीडियासे साभार]

भारतीय संस्कृतिकी मूलाधार—गौ

(गोरक्षपीठाधीश्वर योगी श्रीआदित्यनाथजी महाराज, मुख्यमन्त्री उत्तरप्रदेश सरकार)

गौ प्राचीन कालसे ही भारतीय धर्म और संस्कृति-सभ्यताकी मूलाधार रही है। भारतीय संस्कृतिने प्राचीन कालसे ही गोभक्ति, गोपालनको अपने जीवनका सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य माना है। वेद-शास्त्र, स्मृतियाँ, पुराण तथा इतिहास गौकी उत्कृष्ट महिमाओंसे ओत-प्रोत हैं। स्वयं वेद गायको नमन करता है—

अघ्न्ये ते रूपाय नमः।

हे अवध्या गौ! तेरे स्वरूपको प्रणाम है। ऋग्वेदमें कहा गया है कि जिस स्थानपर गाय सुखपूर्वक निवास करती है, वहाँकी रजतक पवित्र हो जाती है, वह स्थान तीर्थ बन जाता है। हमारे जन्मसे मृत्युपर्यन्त सभी संस्कारोंमें पंचगव्य और पंचामृतकी अनिवार्य अपेक्षा रहती है। गोदानके बिना हमारा कोई भी धार्मिक कृत्य सम्पन्न नहीं होता। गौ अपनी उत्पत्तिके समयसे ही भारतके लिये पूजनीय रही है। उसके दर्शन, पूजन, सेवा-शुश्रूषा आदिमें आस्तिक जन पुण्य मानते हैं। व्रत, जप, उपवास सभीमें गौ और गोप्रदत्त पदार्थ परमावश्यक है। गायका दूध अमृततुल्य होता है, जो शरीर और मस्तिष्कको पुष्ट करता है। गोमूत्र गंगाजलके समान पवित्र माना जाता है और गोबरमें साक्षात् लक्ष्मीका निवास है। शास्त्रोंके अनुसार हमारे अंग-प्रत्यंग, मांस-मज्जा-चर्म और अस्थिमें स्थित पापोंका विनाश पंचगव्य (गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र एवं गोमय)-के पानसे होता है। आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञानके अनुसार भी शरीर-स्वास्थ्य एवं रोग-निवृत्तिके लिये गायके दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, घृत, मूत्र, गोबर आदिका अत्यन्त उपयोग है।

गायके शरीरमें सभी देवताओंका निवास है। अतः गौ सर्वदेवमयी है। पुरातन कालसे ही भारतीय संस्कृतिमें गाय श्रद्धाका पात्र रही है। भगवान् श्रीरामने यौवनमें प्रवेश करते समय अपने जीवनका लक्ष्य '**गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्यास्य सुखाय च**' के पवित्र संकल्पकी पूर्तिके लिये ही उद्घोषित किया था। गायके प्रति भारतीय भावना कितनी श्रद्धा और कृतज्ञतासे ओत-प्रोत थी, यह इस श्लोकसे स्पष्ट होता है—

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

पुराणोंमें पद-पदपर गौकी अनन्त महिमा गायी गयी है। भारतीय संस्कृति ही नहीं, अपितु सारे विश्वमें गौका बड़ा सम्मान था। जैसे हम गौकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार पारसी लोग साँड़की पूजा करते हैं। मिश्रके प्राचीन सिक्कोंपर बैलोंकी मूर्ति अंकित रहती है। ईसासे कई वर्ष पूर्व बने हुए पिरामिडोंमें बैलोंकी मूर्ति अंकित है।

भारतीय संस्कृति यज्ञ-प्रधान है। वेद, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें यज्ञको ही सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यज्ञ करनेसे पृथिवी, जल, वायु, तेज, आकाश—इन पंचभूतोंकी शुद्धि होती है। पंचभूतोंके सामंजस्यसे मानव-शरीर बना है। अतः शरीरको सुरक्षित रखनेके लिये पंचभूतोंका शुद्ध रूपोंमें उपयोग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। यज्ञ करनेसे जो परमाणु निकलते हैं, वे बादलोंको अपनी ओर खींचते हैं, जिससे वर्षा होती है। यज्ञमें गायके सूखे गोबरका प्रयोग किया जाता है। इस सूखे गोबरसे एक प्रकारका तेज निकलता है, जिससे लाखों विषैले कीट तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं। गौके सूखे गोबरको जलानेसे मक्खी-मच्छर आदि मर जाते हैं। गौके दूध, दही और घी आदिमें वे सब पौष्टिक पदार्थ वर्तमान हैं, जो अन्य किसी दुग्धादिमें नहीं पाये जाते। गोमूत्रमें कितने ही छोटे तथा बड़े रोगोंको दूर करनेकी शक्ति है, इसके यथाविधि सेवन करनेसे सभी प्रकारके उदर-रोग, नेत्ररोग, कर्णरोग आदिको मिटाया जा सकता है। कई संक्रामक रोग तो गौओंके स्पर्श की हुई

वायु लगनेसे ही निवृत्त हो जाते हैं। गौके सम्पर्कमें रहनेसे चेचक-जैसे रोग नहीं होते। धर्म और संस्कृतिकी प्रतीक होनेके साथ-साथ गाय भारतकी कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्थाकी भी रीढ़ है। कौटिल्य-अर्थशास्त्रमें गोपालन और गोरक्षणको बहुत महत्त्व दिया गया है। जिस भूमिमें खेती न होती हो, उसे गोचर बनानेका सुझाव अर्थशास्त्रका ही है। गौ धर्म और अर्थकी प्रबल पोषक है। धर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा अर्थसे कामनाओंकी सिद्धि होती है। इस प्रकार गौसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसीलिये प्राचीन कालसे ही गौका भारतीय जीवनमें इतना ऊँचा महत्त्व है। हमारे देशमें गोपालन पश्चिमी देशोंकी भाँति केवल दूधके लिये नहीं होता है, प्रत्युत अमृततुल्य दूधके अतिरिक्त खेत जोतनेके लिये एवं भार ढोनेके लिये बैल तथा भूमिकी उर्वरता बनाये रखनेके लिये उत्तम खाद भी हमें गायसे प्राप्त होती है, जिसके अभावमें हमारे राष्ट्रकी अर्थव्यवस्थाका संकट किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता। हमारे देशमें लाखों एकड़ भूमि ऐसी है, जहाँ ट्रैक्टरोंका उपयोग ही नहीं किया जा सकता।

आज गौको व्यावहारिक उपयोगिताकी दृष्टिसे भौतिक तुलापर तौला जा रहा है। हमें याद रखना चाहिये कि आजका भौतिक विज्ञान गौकी इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमोत्कृष्ट उपयोगिताका पता ही नहीं लगा सकता, जिसे भारतीय शास्त्रकारोंने अपनी दिव्य दृष्टिसे प्रत्यक्ष कर लिया था। गौकी धार्मिक महानता उसमें जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म-रूप तत्त्वोंकी प्रखरताके कारण है, उनकी खोज तथा जानकारीके लिये आधुनिक वैज्ञानिकोंके भौतिक यन्त्र सदैव स्थूल ही रहेंगे। यही कारण है कि इक्कीसवीं सदीकी ओर अग्रसर विज्ञानवेत्ता भी गोमाताके लोम-लोममें देवताओंके निवास-रहस्य और प्रातः गोदर्शन, गोपूजन, गोसेवा आदिका वास्तविक तथ्य समझनेमें असफल रहा है। गौका धार्मिक महत्त्व भाव-जगत्‌से सम्बन्ध रखता है और वह शास्त्र-प्रमाणद्वारा शुद्ध भारतीय संस्कृतिके दृष्टिकोणसे ही जाना जा सकता है। इन सब विशेषताओंके कारण गौको भारतीय संस्कृतिका मूलाधार कहा गया है। [**गोसेवा-अंक**]

गायका दूध बढ़ानेके उपाय

- **प्रतिदिन हरी-ताजी घास पेटभर खिलाना।**
- **दूध दुहकर उसीको पिला देना।**
- **गुड़ एक भाग और जौ तीन भाग एक साथ पकाकर प्रतिदिन खिलाना।**
- **गोभी और पत्तागोभीकी पत्तियाँ खिलाना।**
- **पपीतेके कच्चे फल और पपीतेकी पत्तियाँ पीसकर गुड़ मिलाकर खिलाना।**
- **सनके फूल, महुआके फूल, घास और गुड़ जलमें उबालकर खिलाना।**
- **तीसीकी खल और उबाला हुआ मटर खिलाना।**
- **किसारीकी दालके साथ गेहूँ उबालकर खिलाना।**
- **गुँवार खूब पकाकर या रातभर जलमें भिंगोकर खिलाना।**
- **गुड़ और काँजी मिलाकर खिलाना।**
- **घी, मैदा और गुड़ मिलाकर पकाकर खिलाना। इससे खूब दूध बढ़ता है।**
- **बीजवाले केलेको चावलके साथ उबालकर खिलाना।**
- **पलास और सेमलके फूल खिलाना।**

धनोपार्जनका उचित और अनुचित रूप

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मनुष्य धन क्यों चाहता है? जिन वस्तुओंकी उसे जरूरत है, वे धनसे मिलती हैं। वस्तुओंकी उसे जरूरत क्यों है? भोग-इच्छाकी पूर्तिके लिये। इच्छाकी पूर्ति क्यों चाहता है? उसकी पूर्तिमें सुख प्रतीत होता है। वस्तुओंके संयोगमें सुख मालूम होता है, यही काम है एवं काम ही लोभ है। अत: यह सिद्ध हुआ कि लोभके कारण ही मनुष्यको धनकी जरूरत होती है। लोभ न रहे तो धनकी जरूरत नहीं रहती।

मनुष्यकी आगे बढ़नेकी, ऊपर उठनेकी रुचि स्वाभाविक है, जो वस्तु या परिस्थिति उसे प्राप्त है, उससे वह अच्छी चाहता है। जैसा मकान प्राप्त है, उससे अच्छा चाहता है। वैसा मिल जाय तो उससे अच्छा चाहता है। जितना धन प्राप्त है, उससे ज्यादा धन चाहता है, जो वस्तु प्राप्त है, उससे अच्छी और नाना प्रकारकी वस्तुएँ चाहता है, जितना सम्मान प्राप्त है, उससे अधिक चाहता है। जितनी भोगसामग्री प्राप्त है, उससे अधिक चाहता है। इस प्रकार कभी भी उसकी चाहका अन्त नहीं होता। आगे-से-आगे अभाव बना रहता है और अभावके रहते कभी सुख नहीं मिल सकता।

जब किसी कारणसे नुकसान हो जाता है, प्राप्त वस्तु और धन चला जाता है, तब चाहता है कि किसी तरह खर्च चलता रहे, अधिक नहीं, तो पहलेवाली परिस्थिति ही प्राप्त हो जाय, तो मैं सुखी हो जाऊँगा। फिर यदि वह परिस्थिति प्राप्त हो जाती है, तो उससे अधिक चाहने लग जाता है। इस प्रकार मनुष्य नाना प्रकारकी इच्छाओंके जालमें फँसा रहता है। वास्तवमें वस्तुओंकी प्राप्ति उसके सुख-दु:खका कारण नहीं है। चाहकी पूर्ति सुख और नयी चाहका होना ही दु:ख है एवं चाहकी निवृत्ति ही सुख-दु:खसे परेकी स्थिति है और यही चित्तकी शुद्धि है। मनुष्यको जो सुख किसीके दु:खसे मिलता है, वह ठीक नहीं है, क्योंकि जिसका जन्म किसीके दु:खसे होता है, उसका फल भी दु:ख ही होगा। आमके बीजका फल भी आम ही होगा और बबूलके बीजका फल काँटा होगा।

व्यापारके दो रूप होते हैं—एक तो वह सट्टेका व्यापार है, जिसमें जूएकी भाँति किसी एकका नुकसान ही दूसरेका लाभ होता है। इस बातको सभी जानते हैं कि सट्टेमें धन बाहरसे नहीं आता। सट्टा करनेवालोंमें ही एकका नुकसान और दूसरेका लाभ होता है। सट्टा करनेवाले सभी लाभकी आशासे करते हैं, परंतु सबको लाभ नहीं हो सकता। इस व्यापारमें किसीका दु:ख ही दूसरेका सुख है, अत: यह व्यापार उचित नहीं है। दूसरा व्यापार वह है, जिसमें समाजकी आवश्यकता पूरी करनेके लिये वस्तुओंका उत्पादन किया जाता है, जहाँ वस्तुएँ अधिक होती हैं, वहाँसे उस जगह पहुँचायी जाती हैं, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार जो व्यापार समाजकी आवश्यकता पूरी करनेके लिये किया जाता है, उसमें किसीका नुकसान नहीं होता। श्रम करनेवालेसे लेकर भोक्तातक सभीको सुख मिलता है और व्यापारीको भी उसके परिश्रमके बदलेमें धन मिल जाता है। यह व्यापार ठीक है।

सच्चा सेवक बननेका उपाय

आप अगर सच्चे सेवक होना चाहते हैं और सबसे बड़े सेवक होना चाहते हैं तो आपको ये तीनों बातें अपने ही द्वारा अपनेमें स्वीकार करनी पड़ेंगी—

१-आजसे मैं किसीको बुरा नहीं समझूँगा।

२-आजसे मैं किसीका बुरा नहीं चाहूँगा।

३-आजसे मैं किसीके साथ बुराई नहीं करूँगा।

महानुभाव! मैं नहीं कहता कि आप किसीका भला करें, मैं नहीं कहता कि आप किसीके साथ भलाई करें। यह क्या कम है कि हम किसीको बुरा न समझें। हम किसीका बुरा न चाहें। हम किसीके साथ बुराई न करें। यह कोई कम नहीं है। [सत्संग : सन्तोंके संग]

कृपानुभूति

माननीय राज्यपालजीपर संतकृपा

परम श्रद्धेय गुरुदेव सन्तश्री देवराहा बाबा वर्तमानयुगीन भारतवर्षके सर्वाधिक सुख्यात परमसिद्ध सन्तोंमेंसे एक थे। उनके भक्तों, शिष्यों एवं प्रशंसकोंके अनुसार बाबाजी कई सौ वर्षोंतक इस धराधामपर विराजमान रहे। मेरा यह परम सौभाग्य रहा कि मुझे उनकी कृपा प्राप्त थी। उन्होंने मेरे जीवनको आध्यात्मिक तो बनाया ही साथ ही उनकी कृपासे अनेक भौतिक कठिनाइयों और विपत्तियोंसे भी मुक्ति मिली। उनकी कृपासे मैंने अनेक लोगोंको चमत्कारिक ढंगसे कठिनाइयों एवं रोगोंसे मुक्त होते देखा। इसी प्रकारकी एक घटना यहाँ प्रस्तुत है, जो उत्तर प्रदेशके राज्यपाल रहे माननीय श्री जी०डी० तपासेजीसे सम्बन्धित है। घटना सन् १९७९ ई० की है। मैं पुलिस उप-अधीक्षक पदपर, कसिया (जनपद देवरिया)-में नियुक्त था। माननीय गणपतिराव देवजी तपासे उत्तर प्रदेशके राज्यपाल थे। पुलिस अधीक्षक प्रभारी जनपदकी अनुपस्थितिमें देवरिया जनपदका प्रभार मुझे ही सँभालना पड़ता था। ऐसी ही स्थितिमें एक दिन रातमें दूरभाषपर मुझको सूचना मिली कि माननीय राज्यपालजी कल प्रातः १० बजे राजकीय वाहन एवं पुलिस इस्कोर्टके साथ देवराहा बाबाके दर्शनार्थ पहुँच रहे हैं। मैं समुचित व्यवस्था करूँ तथा उनके आश्रमतक भी सूचना भिजवा दूँ।

माननीय राज्यपालजीको निकटसे देखने तथा पायलट बनकर बाबाके आश्रमतक ले जानेका मेरे लिये पहला अवसर था। अन्य सुरक्षाकर्मियोंको आश्रमकी परिधिसे बाहर रोक मैं उन्हें साथ ले नंगे पैर बाबाके मंचके निकट पहुँचाकर वापस निकलनेवाला ही था कि बाबाजीने मुझको भी रोक लिया। अब मैंने मझोले कदके स्थूलकाय राज्यपाल महोदयको ध्यानसे देखा। देखनेमें उनकी आयु ७०-७५ वर्षसे अधिक नहीं लग रही थी, किंतु मैंने ध्यानसे देखा तो उनको एक स्थानपर स्थिर खड़ा रहनेमें कठिनाई हो रही थी। श्रीतपासेने गुरुदेवसे अपनी समस्या बताते हुए कहा कि 'बाबा! पता नहीं क्यों, कुछ दिनोंसे एक स्थानपर देरतक खड़ा होनेपर मुझको अपने शरीरको स्थिर रखनेमें असुविधा हो रही है। मैं दवा भी ले रहा हूँ, किंतु विशेष लाभ नहीं हो रहा है।' 'कोई बात नहीं भगत! आजके बाद तुमको दवाकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह लो इस गठरीको सिरपर रखकर एक स्थानपर खड़े हो जाओ। यदि कोई परेशानी हो तो दोनों पैरोंकी अँगुलियोंको खड़े-खड़े हिलाते रहो।' कहकर बाबाने मंचसे प्रसादके रूपमें फलोंकी एक टोकरी तपासेजीकी ओर उछाल दी और उनसे टोकरीको लपक लेनेको कहा। मुझको स्वयं आश्चर्य हुआ कि महामहिमने लगभग उछलते हुए दोनों हाथोंसे उस टोकरीको पकड़ लिया। हँसते हुए बाबाने कहा—'देखा! कैसे तुमने प्रसादकी टोकरीको नीचे नहीं गिरने दिया और लपक लिया। अब तुम कम-से-कम आधा घण्टा सिरपर टोकरी रखे एक स्थानपर खड़े रहकर मुझसे बात करते रहो। हाँ, प्रतिदिन कम-से-कम प्रातःकालीन एवं सायंकालीन संध्याको श्रीहरिविष्णु, भगवान् राम तथा भगवान् वासुदेव कृष्णका नाम जप करते रहो। मेरा बताया भगवान् कृष्णका पावन मन्त्र तुम्हें स्मरण हो तो मुझे सुनाओ।' मुझे पुनः सुखद आश्चर्य हुआ, जब तपासेजीने श्रद्धापूर्ण स्वरमें '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥**' पाठ सुना दिया। बाबा ठठाकर हँस पड़े और बोल उठे—'अभी तो कुछ महीनों बाद तुझको दूसरे किसी राज्यकी गवर्नरी करनी है भगत!' 'कहाँकी बाबा?' तपासेजीने उत्सुकतासे पूछा। बाबाने हँसते हुए कहा था—'जितना बताया वही बहुत है। हाँ! उस जगहकी राजनीतिक उठा-पटकमें विवादसे बचना तुम्हारे लिये कठिन हो जायगा। बस मन्त्रजप करते रहना, कल्याण होगा।'

लगभग एक घण्टे बाबाके पास रहनेके बाद प्रसन्न मनसे तपासेजी वापस लौटे थे। लौटते समय तपासेजी मुझको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सके। कुछ महीने बाद वह उत्तर प्रदेशसे स्थानान्तरित होकर हरियाणाके राज्यपाल हुए थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उनका जो रोग बड़े-बड़े डॉक्टरोंकी टीम ठीक न कर सकी, वह रोग बाबाके आश्रममें एक घंटे खड़े रहनेमात्रसे ठीक हो गया। ऐसी थी बाबाकी कृपा!—**डॉ० अजित कुमार सिंह**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आतिथ्यकी महान् भारतीय परम्परा

एक भारतीय प्राध्यापक अनेक वर्षोंतक इंग्लैण्डके ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमें शिक्षा एवं शोधके पश्चात् जब भारत लौटा तो विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक नियुक्त हुआ। वह प्राय: प्रतिदिन नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्तामें एक अन्य युवा प्राध्यापकको शोधमें मार्गदर्शनहेतु ले जाता था। संध्या समय लौटती बारमें वे दोनों फिदरपुर मार्केटमें एक साधारण होटलमें चाय, जलपान करते। ऑक्सफोर्डका पढ़ा हुआ प्राध्यापक प्रतिदिन भारतके सामान्य चाय होटलकी इंग्लैण्डके बड़े वैभवशाली होटलोंसे तुलनाकर भारतकी निन्दा करता रहता था। वहाँके होटल महल-जैसे थे और भारतमें खपरासे ढके हुए साधारण झोंपड़ेंमें होटल चलता। वहाँ कालीन बिछे रहते, यहाँ कीचड़ और धूलसे भरा हुआ मिट्टीका फर्श, वहाँ सुन्दर सूट-बूट पहने बेरे साफ-सुथरी मेजोंपर भोजन पहुँचाते, यहाँ अधनंगे-अनपढ़ बच्चे गन्दी-सी टेबलोंपर मैले हाथोंसे मैले बरतनोंमें खाना पहुँचाते थे। वहाँ सुगन्धित वातावरण, यहाँ मक्खी-मच्छरकी भरमार, वहाँ बैण्ड-बाजा और नर्तकियाँ, यहाँ अजीब शोरगुल और नौकरोंकी चिल्लाहट, वहाँका मैनेजर या मालिक रईसके समान, यहाँका होटल-मालिक पसीनेसे लथपथ एक गंजी एवं धोती पहने हुए ग्राहकोंसे पैसा लेनेमें और नौकरोंको डाँटनेमें लगा हुआ। इंग्लैण्डकी चकाचौंधके बाद विदेशसे आये हुए उस भारतीयको भारतमें कुछ भी अच्छा दिखायी नहीं देता। वह रोज कहता—This dirty India. I hate India. एक दिन नेशनल लाइब्रेरीमें बहुत विलम्बतक पुस्तकोंका अध्ययनकर जब दोनों प्राध्यापक लौटे तो देखा कि बाजार बन्द हो गया है। कोई खानेकी दुकान भी खुली नहीं मिली। अन्तमें उसी होटलके पास पहुँचे जहाँ प्रतिदिनका चाय-पान करते थे। होटलका द्वार ढका हुआ था। मालिकने कहा—'होटल बन्द हो चुका है।' ऑक्सफोर्डवाले प्रोफेसरने झाँककर देखा तो भीतर अन्दरके चूल्हेमें रोटियाँ बन रही थीं। उसने रोटियोंकी ओर संकेत करते हुए कहा—'रोटियाँ तो बन रही हैं।' मालिक उन्हें भीतर ले गया और आदरपूर्वक स्वयं दो थालीमें भोजन परोसकर लाया। उन्हें उस दिन भोजनसे बड़ी तृप्ति हुई। वे विस्मयमें थे कि जो मालिक स्वयं गद्दीपर बैठे हुए नौकरोंसे काम कराता था, वह आज स्वयं अपने हाथसे इतनी सेवा क्यों कर रहा है! भोजनके उपरान्त जब ऑक्सफोर्डवाले प्रोफेसरने पूछा कि बिल कितना हुआ तो मालिकने हाथ जोड़कर कहा, 'हमें लज्जित मत करो। हमारा होटल बन्द हो चुका है। यह भोजन आपको अतिथिके रूपमें कराया है। पैसेका नाम लेकर हमारे अतिथि-धर्मको कलंकित मत कीजिये।' प्रोफेसरने बहुत कहा कि 'दुकान यही है। यहींपर हम दोनों जलपान लेते हैं।' पर मालिकने कहा कि दुकानकी अपनी मर्यादा है। दुकान बन्द हो चुकी है। यह भोजन दुकानके लिये नहीं, हमारे निजी प्रयोगके लिये बन रहा था। इसका पैसा लेनेपर हमारा धर्म नष्ट हो जायगा। इस दृश्यसे उस प्रोफेसरकी आँखें श्रद्धासे गीली हो गयीं। और उसने कहा This is wonderful India. इंग्लैण्डमें होटलमें भोजन करनेपर सगे भाईसे भी चार्ज किया जाता है, किंतु भारतमें नितान्त अपरिचित व्यक्तिको निष्काम भावसे भोजन कराना अतिथि-धर्म माना जाता है। उस दिन उसे समझ आया कि भारतकी निर्धनताके फटे चिथड़ोंके नीचे भी भारतकी दिव्य आत्मा छिपी हुई है।—**डॉ० हरवंशलाल ओबराय**

(२)

पैसा एक साधन है, समाधान नहीं

मुझे कई सेवा-संस्थाओंमें काम करनेका अवसर मिला, जैसे—अस्पताल, संस्कृत महाविद्यालय, कॉलेज, गौशाला, व्यायामशाला आदि। मुझे संस्थाएँ जो मिलीं, वे बीमार हालातमें और आर्थिक दृष्टिसे बुरी तरह कमजोर थीं। एक संस्था तो भारतके बहुत बड़े औद्योगिक घरानेसे सम्बन्धित थी, जिनके पास पैसेकी कोई कमी नहीं थी, लेकिन वह भी बीमार चल रही थी। कारण सही कार्यकर्ताका अभाव था। आजकल समाजमें भी जो पैसा दान दे उसकी

ज्यादा पूछ होती है, वनिस्पत कार्यकर्ताके, परंतु मेरा यह अनुभव कहता है कि पैसेके अभावमें कभी कोई संस्था मरती नहीं। जब मरती है तो सही कार्यकर्ताके अभावमें। फिर पैसेसे साधन खरीदे जा सकते हैं जैसे सोनेके लिये बेडका गद्दा, लेकिन आवश्यक नहीं कि नींद आ ही जाय। कारण पैसेसे बेड खरीद सकते हैं लेकिन पैसेसे अच्छी नींद आयेगी, ऐसा संभव नहीं। उसी प्रकार आप पैसेसे कई व्यंजन तो खरीद सकते हैं, लेकिन भूख पैसेसे नहीं आयेगी। नींदके लिये सन्तुष्टि तथा निश्चिंतता चाहिये, अगर चिन्ता रहेगी तो स्वाभाविक है गहरी नींद नहीं आयेगी, भले ही आप बिस्तरपर पड़े-पड़े रात बिता दें। ठीक उसी प्रकार बुखारसे जैसे अच्छे-से-अच्छा भोजन भी खानेका मन नहीं करेगा। कारण भूख मर जाती है, लेकिन स्वास्थ्य ठीक हो, सुख-शान्ति हो तो सादा भोजन भी रुचिकर लगेगा।

आपको अनुभव चाहिये तो किसी वृद्धको पकड़ना पड़ेगा, जिसने जिन्दगी जिया है, आप चाहें कि बोरा भरके पैसा बाजार ले जाऊँ और अनुभव खरीदकर ले आऊँ तो अनुभव मिलेगा नहीं।

एक सज्जनने कहा कि मेरे पास रुपया है, लेकिन मैं सबसे गरीब आदमीको दूँगा। एक-से-एक गरीब भीख माँगने आये, लेकिन वे उसको सबसे गरीब नहीं मानते, फिर किसी राजाकी सवारी सामनेसे जा रही थी, तो उसने पैसोंका थैला उसके पास फेंक दिया। तो राजाने पूछा कि तुम तो सबसे गरीब व्यक्तिको पैसे देनेवाले हो, तो उस सज्जनने कहा कि मेरी दृष्टिमें सबसे ज्यादा गरीब आप ही मुझे लगे। राजाने पूछा कि मेरे पास इतनी सम्पत्ति है, इतना बड़ा राज्य है, मैं सबसे बड़ा गरीब कैसे ? तो उस सज्जनने कहा कि आपके पास सम्पत्ति और राज्य होते हुए भी आपकी भूख दूसरेकी सम्पत्ति एवं राज्यको हड़पनेकी मिटी नहीं, अतः मेरी दृष्टिमें सबसे बड़े गरीब आप ही हैं, कारण आप हमेशा अभावमें रहते हैं। यहाँ भी देखें कि सम्पत्ति एवं राज्य होते हुए भी वह गरीब है।

एक संन्यासीके पास लँगोट एवं कमण्डलुके अलावा कुछ भी नहीं, फिर भी वह गरीब नहीं। वहीं एक भिखारीके पास इतना पैसा था कि वह अपने कमाये पैसोंके बिस्तरपर सोता था। अब आप देखें संन्यासीके पास लँगोट एवं कमण्डलुके अलावा कुछ नहीं। अभी भिक्षा मिल गयी तो शामकी भिक्षाका ठिकाना नहीं, फिर भी चिन्ता नहीं, कारण वह अपने स्वभावमें सन्तुष्ट है, वहीं एक भिखारीके पास पैसा होते हुए भी वह गरीब है, कारण वह हमेशा अभावमें रहता है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि पैसा आपको न सुख देगा, न शान्ति देगा और न सन्तुष्टि देगा, केवल साधन देगा।

स्वामी रामतीर्थ हमारे देशके बहुत ही उच्चकोटिके महात्मा हो गये। उनको वेदान्तका मूर्तिमान् रूप माना जाता था। एक बार अमेरिका पानीके जहाजसे जा रहे थे। कोई सज्जन उनसे मिलने आये तो पूछा कि 'अमेरिकामें आपका कोई मित्र या परिचित है' तो स्वामीजीने कहा कि 'है तो' उन्होंने पूछा—'वह कौन है' तो स्वामीजी बोले—'तुम हो।' वह स्वामीजीसे प्रभावित हो गया और पूछा—'आपका सामान कहाँ है ?' 'मेरा सामान यही है जो मेरे तनपर है।' 'आप कहाँ खाते-पीते हैं' तो स्वामीजीने कहा कि 'प्यास लगती है तो कोई हमें पानी पिला देता है, भूख लगती है तो कोई रोटी दे देता है तथा सोनेके लिये पेड़के नीचेकी जमीन काफी है।' अब आप देखें ऐसे स्वामीजीके लिये पैसा भी साधन नहीं रह गया। ऐसे बहुतसे महात्मा हुए, जो पैसेको स्पर्श ही नहीं करते थे। स्वामी रामकृष्णदेव परमहंस तो पैसोंको स्पर्श भी नहीं करते थे। तो ऐसेमें उनके लिये पैसा साधन भी नहीं रह गया। राजा-महाराजा एवं सम्पन्न लोग ऐसे ही महात्माओंके पास आशीर्वाद लेने जाते हैं। ऐसे महात्माओंके लिये पैसा भी साधन होनेका महत्त्व खो देता है। ऐसे उदाहरण कई महात्माओंके मिलेंगे। किसी संस्थामें निःस्वार्थ भावसे सेवा देनेवालेको पैसा देनेवाले अपने-आप मिल जाते हैं, माँगना भी नहीं पड़ता। ऐसा ही मेरा अनुभव है। अतः पैसा साधन होते हुए भी विरक्त संन्यासीके पास साधन होनेका भी महत्त्व खो देता है।

—दीनानाथ झुनझुनवाला

(३)

भगवान् तो भक्तका प्रेम देखते हैं

जीवनजी डूडी राजस्थानके नागौरके कलवा गाँवमें रहनेवाले एक कट्टर कृष्णभक्त थे। २० जनवरी सन् १६१५ई० में, उन्हें एक कन्यारत्नकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम उन्होंने

करमाबाई रखा। एक बार जीवनजीको बाहर जाना पड़ा और इसलिये, उन्होंने करमाबाईको निर्देश दिया कि वे श्रीकृष्ण के लिये सुबह भोजन (भोग या प्रसाद या नैवेद्य) तैयार करें और चढ़ायें। प्रसादके भोग लेनेके बाद ही उन्हें भोजन करना चाहिये, उन्होंने चेतावनी दी।

अगली सुबह, करमाबाई जल्दी उठ गयी। अपने पिताके निर्देशोंका पालन करनेके इरादेसे, उसने तुरंत खिचड़ी तैयार की और कृष्णको अर्पित की। हालाँकि, भोग अछूता रहा। इस बातसे परेशान होकर करमाबाई खुद भी भूखी रह गयी। जब प्रभुने नहीं खाया तो वह कैसे खा सकती थी ? कुछ समय बाद उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर कृष्ण करमाबाईके सामने प्रकट हुए और भोग ग्रहण किया।

यह अब एक दिनचर्या बन गयी, हर सुबह करमाबाई उठती और जल्दीसे खिचड़ी तैयार करती, जिसे कृष्ण पसन्द करते थे। जब जीवनजी लौटे तो करमाबाईने उन्हें सारी घटनाएँ बतायीं। वह चौंक गये और उसपर विश्वास करनेसे इनकार कर दिया। करमाबाईके कहनेपर कृष्ण उन दोनोंके सामने प्रकट हो गये और खिचड़ी खायी।

कुछ वर्षोंके बाद करमाबाई ओडिशाके पुरीमें रहने चली गयीं। वहाँ भी, भगवान् जगन्नाथ हर सुबह अपनी पसन्दीदा खिचड़ी खानेके लिये उनके दरवाजेपर आते।

एक बार एक संत करमाबाईके घर आये और रातके लिये डेरा डाला। अगली सुबह उन्होंने करमाबाईकी दिनचर्यापर ध्यान दिया, तो वे घबरा गये। बिना नहाये, पूजा-पाठ किये, बर्तन साफ किये और रसोई साफ किये बिना वह भोग कैसे बना सकती थी। उन्होंने उसे भोग तैयार करने और चढ़ानेसे पहले पालन किये जानेवाले नियमोंके बारेमें बताया।

अगली सुबह, जब कृष्णने पुकारा—'माँ! मैं यहाँ हूँ। मेरे लिये मेरी खिचड़ी लाओ।'

'कृपया प्रतीक्षा करें, मैं स्नान कर रही हूँ।'—उत्तर आया

थोड़ी देर बाद वह फिर पुकारा—'माँ! खिचड़ी कहाँ है ?'

करमाबाईने कहा—'मैं रसोई और बर्तन साफ कर रही हूँ, बस कुछ और मिनट रुकिये।'

'वे मुझे मंदिरमें बुला रहे हैं, माँ! वहाँ जल्दी जाना है। कृपया मुझे खिचड़ी दें'—जगन्नाथने भीख माँगी। ब्रह्माण्डके भगवान् जिनके लिये ५६ प्रकारके व्यंजन भोगके रूपमें इंतजार कर रहे थे, एक माँकी प्रेममयी भक्तिकी खिचड़ीके लिये तरस रहे थे।

करमाबाई भोग लेकर रसोईके बाहर निकली। उन्होंने झटपट उसे खा लिया, और वापस मन्दिरमें चले गये। जब पुजारीने मंदिर खोला, तो उसने देखा कि कुछ खिचड़ी उनके मुँहमें चिपकी हुई है , तो उन्होंने पूछा—'यह कैसे हुआ, भगवन् ?'

कृष्णने पूरी कहानी सुनायी कि कैसे करमाबाईके घरमें हमेशा खिचड़ी होती थी, और आज कैसे उन्हें देरी हुई; क्योंकि करमाबाईने संतके निर्देशोंका पालन किया था।

तब भगवान् जगन्नाथके निर्देशके साथ मंदिरके पुजारी करमाबाईके पास पहुँचे और उनसे भगवान्की इच्छा बतायी। सन्तको यह सुनकर बड़ा सदमा लगा कि उनके कारण भगवत्कार्यमें बाधा पड़ी और भगवान्को भूखा रहना पड़ा। उन्होंने करमाबाईको अपनी सामान्य दिनचर्याके अनुसार भोग तैयार करनेको कहा। भगवान् चाहते थे कि भक्तका भोग प्रेमसे तैयार हो, कर्मकाण्डोंकी पवित्रताके विनियमोंसे रहित।

कुछ वर्षोंके बाद एक दिन पुजारीने भगवान्की आँखोंसे आँसू बहते हुए देखा। यह पूछे जानेपर कि वे क्यों रो रहे हैं, भगवान्ने उत्तर दिया—'मेरी माँ करमाबाईका आज निधन हो गया। नि:संदेह वह मेरे पास आयी है, लेकिन मुझे उसकी खिचड़ीकी याद आ रही है। अबसे कौन मुझे खिचड़ी देगा।' यह कहकर भगवान् जगन्नाथ और जोरसे रुदन करने लगे।

और इसलिये यह तय हुआ कि उस दिनसे करमाबाईकी खिचड़ी ५६ विभिन्न व्यंजनोंके भोगसे पहले श्रीजगन्नाथ स्वामीको दिया जानेवाला पहला भोग होगा। भगवान् तो भक्तका प्रेम देखते हैं।

मनन करने योग्य

किसीका अपमान न करें

कुसुमपुरमें नन्द नामका एक राजा था। उसके मन्त्रीका नाम था शकटार। किसी कारणवश मन्त्री और राजामें विरोध हो गया। फलस्वरूप राजाने मन्त्री शकटारकी सभी सम्पत्तियोंको जब्त करके समस्त परिवारजनोंके साथ उसे कारागारमें बन्द करवा दिया। राजाकी ओरसे शकटारसहित समस्त परिवारको आहारके रूपमें आधा पाव सत्तू मिलता था, जो कि एक व्यक्तिकी क्षुधाको शान्त करनेयोग्य भी नहीं था। परिवारके सभी सदस्योंने विचार किया कि राजासे बदला लेनेके लिये शकटारकी प्राण-रक्षा आवश्यक है, अत: इस आहार (सत्तू)-को लेकर शकटार जीवित रहें एवं राजा नन्दका प्रतीकार करें। कालान्तरमें शकटारके परिवारके सभी सदस्य अन्न-जलके अभावमें कालकवलित हो गये, किंतु शकटार बदला लेनेकी प्रतीक्षामें जीवित बना रहा। मन्त्री तो वह राजाका था ही। अत: कभी-कभी राजाकी अनेक समस्याओंको वह अपने बुद्धिचातुर्यसे परोक्षरूपमें सुलझा दिया करता था। राजाको जब यह ज्ञात हुआ कि शकटार अभी जीवित है एवं उसने ही इन समस्याओंका समाधान किया है, तो प्रसन्न होकर राजा नन्दने शकटारको बन्धनमुक्तकर अपने प्रधान अमात्य राक्षसके सहायकके रूपमें नियुक्त कर दिया।

शकटार दुर्लभ पद पाकर प्रसन्न हुआ, उसने सोचा—मेरे परिवारके सभी सदस्योंने राजा नन्दसे बदला लेनेके निमित्त अपना-अपना आहार त्यागकर मेरे प्राण बचाये। अब अवसर पाकर बदला नहीं लेनेसे समाजमें अपयश तो होगा ही, साथ ही मैं कायर भी कहलाऊँगा।

इस प्रकार विचार करता हुआ शकटार नगरके बाहर भ्रमण करने चला गया। उसने भ्रमण करते हुए देखा कि एक ब्राह्मण-बालक कुशाको उखाड़कर उसकी जड़में तक्र डाल रहा है। यह देखकर मन्त्री शकटारने पूछा—'ब्राह्मण! तुम कौन हो और यहाँ क्या कर रहे हो?' उसने उत्तर दिया—'मैं चाणक्यशर्मा नामका ब्राह्मण हूँ। अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन करके विवाहार्थ इधरसे जाते हुए मेरे पाँवमें यह कुशांकुर चुभ गया। इस घावके फलस्वरूप मेरा विवाह बाधित हुआ। मैंने क्रोधित होकर प्रतिज्ञा की है कि इस स्थलके कुशोंको ही निर्मूल कर दूँगा। मैंने आयुर्वेदशास्त्रमें ऐसा पढ़ा है कि कुशकी जड़में तक्र डालनेसे कुशका नाश हो जाता है, इसपर शकटारने पूछा—'यदि तुम वृक्षायुर्वेद नहीं जानते तो इसके विनाशका क्या उपाय करते?'

चाणक्यने उत्तर दिया कि 'अभिचार-कर्मके द्वारा कुशके विनाशकी कामनासे हवन करता।'

शकटार उस ब्राह्मण बालकके प्रतिशोधकी भावना एवं उपायोंको जानकर चकित हो गया। वह सोचने लगा कि यदि यह ब्राह्मण किसी उपायसे मेरे शत्रु अर्थात् राजा नन्दका भी शत्रु हो जाय तो मुझे वैरभावका बदला लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। यह विचारकर शकटार उस ब्राह्मणके अनुकूल बातें करता हुआ उसे अपने घर ले आया और राजपुरोहितसे मिलकर बड़ी ही युक्तिसे उसने राजा नन्दके पिताके क्षयाहश्राद्धमें ब्राह्मण-भोजनके रूपमें चाणक्यको निमन्त्रित करवाया। शकटारने सोचा कि अविवाहित, कपिशवर्ण, काले-काले नख तथा दाँतवाले एवं मेरे द्वारा निमन्त्रित इस ब्राह्मणको देखकर मेरा विरोधी मन्त्री राक्षस इसको श्राद्ध-भोजनके अयोग्य समझकर अपमानित करेगा और हुआ वही। राजा नन्द श्राद्धके आसनपर पहुँचा तो वहाँ आसनपर वैसे बालकको देखकर मन्त्री राक्षस बोला—'यह ब्राह्मण श्राद्ध-कर्मके योग्य नहीं है', तदनन्तर राक्षसकी मन्त्रणासे राजाने चाणक्यको अपमानितकर बाहर निकाल दिया। अपमानित ब्राह्मण चाणक्यने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा की कि जबतक राजा नन्दका वध (नाश) नहीं करवा दूँगा, तबतक अपनी इस मुक्त शिखाको नहीं बाँधूँगा।'

चाणक्यकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर मन्त्री शकटार कृतकृत्य हो गया और राजा नन्दसे अपने परिवारके विनाशका बदला लेनेमें सफल हुआ। [पुरुषपरीक्षा]

गीताप्रेससे प्रकाशित महापुराण—अब उपलब्ध

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2223 2224	**श्रीशिवमहापुराण** (दो खण्डोंमें) सटीक	740	1362	**श्रीअग्निपुराण**—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित) केवल हिन्दी	300
1897 1898	**श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण** [मतान्तरसे] (दो खण्डोंमें) ,,	600	44	**संक्षिप्त पद्मपुराण** ,,	370
26,27	**श्रीमद्भागवतमहापुराण** (दो खण्डोंमें) ,,	760	1183	**संक्षिप्त श्रीनारदपुराण** ,,	300
557	**श्रीमत्स्यमहापुराण** ,,	380	279	**संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण** ,,	480
48	**श्रीविष्णुपुराण** ,,	200	1111	**संक्षिप्त ब्रह्मपुराण** ,,	160
1432	**श्रीवामनपुराण** ,,	180	539	**संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण** ,,	120
1131	**श्रीकूर्मपुराण** ,,	200	1189	**संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण** ,,	230
1985	**श्रीलिङ्गमहापुराण** ,,	300	1361	**संक्षिप्त श्रीवराहपुराण** ,,	150
1113	**नरसिंहपुराण**— ,,	120	631	**संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण** ,,	280

सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1594)

प्रस्तुत पुस्तकमें एक साथ श्रीगणपति, श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीदुर्गा, श्रीसूर्य, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीलक्ष्मी-नृसिंह, श्रीगोपाल, श्रीराधाकृष्ण, श्रीहनुमान्, श्रीगायत्री, श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीलक्ष्मी, श्रीअन्नपूर्णा, श्रीसीता, श्रीराधिका, श्रीललिता, श्रीभवानी, श्रीदत्तात्रेय, श्रीवक्रतुण्ड-महागणपति—22 देवी-देवताओंके सहस्रनामावलीसहित सहस्रनामस्तोत्र प्रकाशित किये गये हैं। परमात्मप्रभुकी प्रसन्नताके निमित्त पूजा-अर्चनाके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹150

सहस्रनामस्तोत्र (नामावलीसहित) अलगसे पॉकेट साइजमें भी

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
1599	**श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्**	10	1664	**श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्**	10	1706	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्**	10
1600	**श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्**	10	1665	**श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्**	10	1707	**श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्**	10
1601	**श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्**	10	1704	**श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्**	10	1708	**श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्**	12
1663	**श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्**	10	1705	**श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्**	10	1709	**श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम्**	10

शतनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1850) पुस्तकाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, दुर्गा आदि विभिन्न देवों और देवियोंके शतनामस्तोत्रों एवं शतनामावलियोंको प्रकाशित किया गया है। भक्तगण इसके माध्यमसे उपासना एवं पूजा करके यथोचित लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मूल्य ₹35

नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2295	**चित्रमय श्रीरामचरितमानस**-सटीक—ग्रन्थाकार	1600	2166	**श्रीरामचरितमानस**-सटीक, ग्रन्थाकार (साधारण संस्करण)	230
1389	**श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि०सं०)	800	1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	170
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	700	1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार	400
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	450	82	,, मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती, अंग्रेजी भी]	150
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, असमिया, नेपाली, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजीमें भी]	400	83	,, मूलपाठ,ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	170
			84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	100
			85	,, मूल, गुटका [गुजरातीमें भी]	60
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	280	1544	,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	70

प्र० ति० 20-07-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—श्रीदुर्गासप्तशतीके विभिन्न संस्करण

(शारदीय नवरात्र 26 सितम्बर सोमवारसे प्रारम्भ होगा)

कोड 1346, सानुवाद, मोटा टाइप

कोड 1281, सानुवाद, विशिष्ट संस्करण

कोड 1161, केवल हिन्दी

कोड 1567, मूल, मोटा

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	**मूल,** मोटा टाइप, बेड़िआ (मलयालममें भी)	50
876	**मूल,** गुटका	25
1346	**सानुवाद,** मोटा टाइप	40
1281	**सानुवाद** (वि० सं०)	70
118	**सानुवाद,** सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ, तेलुगु, नेपालीमें भी)	40
489	**सानुवाद,** सजिल्द (गुजरातीमें भी)	60
866	**केवल हिन्दी**	30
1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	70

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—शक्ति-उपासकोंके लिये कुछ विशिष्ट प्रकाशन

'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'—[सचित्र, मूल श्लोक, हिन्दी-व्याख्यासहित] (कोड 1897-1898) दो खण्डोंमें—इस महापुराणको (मूल श्लोक भाषा-टीकासहित)-दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। इसके प्रथम खण्डमें 1 से 6 स्कन्ध एवं द्वितीय खण्डमें 7 से 12 स्कन्धकी कथाएँ दी गयी हैं। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹600, **संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत [मोटा टाइप] (कोड 1133) ग्रन्थाकार**—मूल्य ₹350, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी उपलब्ध।

महाभागवत [देवीपुराण] (कोड 1610) हिन्दी-अनुवादसहित—इस पुराणमें मुख्यरूपसे भगवतीके माहात्म्य एवं लीला-चरित्रका वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें मूल प्रकृतिके गंगा, पार्वती, सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती और तुलसीरूपमें की गयी विचित्र लीलाओंके रोचक आख्यान हैं। मूल्य ₹170

देवीस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1774) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भगवती महाशक्तिके उपासकोंके लिये देवीके अनेक स्वरूपोंके उपासनार्थ चुने हुए विभिन्न स्तोत्रोंका अनुपम संकलन किया गया है। मूल्य ₹45

शक्तिपीठदर्शन (कोड 2003)—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवतीके 51 शक्तिपीठोंके इतिहास और रहस्यका विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹25

शक्ति-अङ्क (कोड 41) [सचित्र, सजिल्द] ग्रन्थाकार—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासनापद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। मूल्य ₹250

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org / gitapressbookshop.in
If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)